विवेक-ज्योति

वर्ष ५२ अंक १२ दिसम्बर २०१४

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०१४

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५२
अंक १२

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं
विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! 'विवेक-ज्योति' कई वर्षों से घाटे में ही चलती आ रही है। फिर भी हमने पाठकों की सुविधा हेतु मूल्य यथोचित नहीं बढ़ाया। २००८ से अब तक अन्य सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण, डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि हुई है, जिससे 'विवेक-ज्योति' के घाटे का प्रतिशत बहुत अधिक बढ़ गया है। इसका एक दूसरा कारण है कि हमने सितम्बर-२०१४ से आर्ट-पेपर में रंगीन पृष्ठ आरम्भ किया है और आवरण पृष्ठ तथा अन्दर के पृष्ठों के कागज को भी बदलने जा रहे हैं। इसलिये इसमें अधिक व्यय हो रहा है। हम घाटा सहते हुये ही इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं। अब जनवरी-२०१५ से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. ८०/-, एक प्रति रु.१०/-, पाँच वर्षों के लिये रु.३७०/- और आजीवन शुल्क (२० वर्षों के लिये) - रु. १४००/-, संस्थाओं के लिये वार्षिक रु.११०/- और पाँच वर्षों के लिये रु.५००/-** । आशा है आप हमारा पूर्ववत सहयोग करते रहेंगे। - स्वामी स्थिरानन्द, व्यवस्थापक, 'विवेक-ज्योति' कार्यालय।

दिसम्बर - २०१४ के जयन्ती और त्योहार

०२ गीता जयन्ती
१३ माँ सारदा जयन्ती
१८ स्वामी शिवानन्द जयन्ती
गुरुघासीदास जयन्ती
२५ क्रिसमस डे
२७ स्वामी सारदानन्द जयन्ती

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

श्रीमान सम्पादक महोदय,

सादर प्रणाम

'विवेक-ज्योति' के अंकों में पठनीय एवं मननीय सामग्री हर मास प्रस्तुत करने के लिये हमलोग आपके अनुगृहित हैं। हमलोगों का इसी तरह मार्गदर्शन करते रहें। एक-दो सुझाव देने का साहस कर रहा हूँ। आशा है आप अन्यथा न लेगें –

१. मुख-पृष्ठ पर हमेशा स्वामीजी का चित्र दिखता है। कभी-कभी ठाकुर-माँ-स्वामीजी से सम्बन्धित अन्य स्थानों के दृश्य और उनके विषय में जानकारी दी जा सकती है। उदाहरणस्वरूप नागपुर का जीवन-विकास और प्रबुद्ध भारत देखे जा सकते हैं।

२. रायपुर आश्रम हमारे छत्तीसगढ़ का प्रमुख आश्रम है। इसलिये विवेक-ज्योति को उस अंचल की गतिविधियाँ, रामकृष्ण भावधारा से सम्बन्धित गतिविधियों का समावेश 'समाचार सूचनाएँ' में छाप करके उन आश्रमों को प्रोत्साहित करने का दायित्व निभाना चाहिये।

३. छत्तीसगढ़ अंचल के आश्रम दुर्ग, अमरकंटक, कोरबा, अम्बिकापुर में हैं, उनके पते और टेलीफोन नम्बर प्रकाशित किये जा सकते हैं, जिससे सम्पर्क बढ़ेगा।

४. रायपुर के पुस्तकालय में आई नई पुस्तकों की सूची और समीक्षा भी स्वागतार्ह होगीं।

आशा है, आप अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद इस ओर ध्यान देंगे।

– एसएच. एस.डब्लू खनकोजे, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

– सम्माननीय, खनकोजे जी, आपका पत्र मिला। आत्मीयतापूर्वक परामर्श हेतु धन्यवाद। 'विवेक-ज्योति' पत्रिका पाठकों की है और पाठकों की रुचियों एवं सुविधाओं का ध्यान रखना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आपके और अन्य कई पाठकों के सूझावों के अनुसार बेलूड़ मठ एवं अन्य आश्रमों के चित्र एवं भावधारा की सूचनायें विवेक-ज्योति के विगत कई अंकों से रंगीन प्रकाशित की जा रही हैं। भविष्य में अन्य चीजों पर भी ध्यान दिया जायेगा। सभी चीजें, हमेशा विभिन्न परिस्थितियों में सम्भव नहीं हो पातीं, फिर भी हम पाठकों की सुविधाओं पर ध्यान देने के लिये दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ प्रयासरत हैं। आपके समयानुसार सुझाव हमारें पथ-प्रदर्शक होंगे।

– सम्पादक

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्यों की सूची

१४८१. श्री बलबीर सिंह राणा, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)
१४८२. श्री अरूण भोजवानी, सदर बाजार, बिलासपुर (छ.ग.)
१४८३. श्री विजय पाल मघान, गाँधी नगर, जींद (हरयाणा)
१४८४. श्री मधुसूदन लाल पुरोहित, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)
१४८५. श्री बीर बहादुर सिंह, लक्ष्मी टावर, बागबाजार, कोलकाता
१४८६. श्री विनय श्रीवास्तव, सी-३२, सरकंडा, बिलासपुर (छ.ग.)
१४८७. श्री दिनेश गोविन्द पटेल, खारघर, नवी मुम्बई (महा.)
१४८८. श्री नीलकंठ हिल्स उपवन लाइब्रेरी बदलापुर, थाने (महा.)
१४८९. श्री नीरज कंचन, जिरकॉन बिल्डींग,खराडी, पुणे (महा.)
१४९१. श्री विक्रम उपाध्याय, श्याम नगर, रायपुर (छ.ग.)
१४९२. श्री जयन्तीभाई एम. पटेल, खारघर, जि.-रायगढ़ (महा.)
१४९३. श्रीमती हेमलता दिनेश पटेल, डोम्बीवली(ई) थाणे (महा.)
१४९४. श्री पुनीत निशानिया, भारलय, जि.-होशंगाबाद (म.प्र.)
१४९५. श्री शिव कुमार शाह, पुरानी बाजार, लखी सराई (बिहार)
१४९६. स्वामी करुणानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहबाद
१४९७. श्री करूनेश प्रताप सिंह, मायबाजार,जि. फैजाबाद (उ.प्र.)
१४९८. श्री प्रवीण कुमार अवस्थी, सि.मालवा, होशंगाबाद (म.प्र.)
१४९९. श्री आनन्द तोमर, सार्किट हाउस रोड, होशंगाबाद (म.प्र.)
१५००. श्री प्रभाकान्त अवस्थी, नर्मदा प्रेस, होशांगाबाद (म.प्र.)
१५०१. सदगुरु साधना सदन सेवाश्रम, सिवनी, नागपुर (महा.)
१५०२. श्री लोकेश सचन, इंदिरा नगर, कल्याण पुर, कानपुर
१५०३. श्री दिनेश कुमार गुप्ता, टी.पी. नगर,ईलाहबाद (उ.प्र.)
१५०४. स्वामी सर्वात्मानन्द, रा.कृ.सारदा आश्रम, गढ़वाल (उ.ख)
१५०५. श्री हरिकेश नलिनाकंठ भट्ट, सुरेन्द्र नगर (गुजरात)
१५०६. श्री निकुंज मनुभाई देसाई, हालार, वलसाड़, (गुजरात)
१५०७. श्री अनुभव कृष्ण, नरसिंह मंदिर, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
१५०८. श्री रामकृष्ण अकुली, मठ पुरैना, रिंगरोड, रायपुर (छ.ग.)
१५०९. डॉ. पुनीत अग्रवाल, मशनरी मार्केट, शाहजाहनपुर (उ.प्र.)
१५१०. श्री राजेश कुमार सोनी, कुन्दन ज्वेलर्स, गाडरवारा (म.प्र.)
१५११. श्री हरिश कुमार कौशिक, परसदा-तिफरा, बिलासपुर(छ.ग.)
१५१२. श्री आर.के. तिवारी, अशीष नगर,रिसाली, भिलाई (छ.ग.)
१५१३. कॉ. इन्द्रासन पाण्डे, इंदिरा नगर एक्स. लखनऊ (उ.प्र.)
१५१४. श्री बंशीलाल सोनबेर, संतोषी नगर, रायपुर (छ.ग.)
१५१५. डॉ. सतीश चन्द्र झा, पा. - सकरी, जि. मधुबनी (बिहार)
१५१६. डॉ. महेन्द्र मील, पा. - कोलिडा, जिला - सीकर (राज.)
१५१७. डॉ. संदीप वर्मा, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५१८. डॉ. ओ. एन. तिवारी, बिरकोना, बिलासपुर (छ.ग.)
१५१९. श्री गणेश शंकर मिश्रा, सुन्दर नगर, रायपुर (छ.ग.)
१५२०. श्री प्रेम कुमार मित्तल, वृंदावन, जिला - मथुरा (उ.प्र.)
१५२१. कु.पूर्णिमा साहु,रा.मि.आ. गर्ल्स हॉस्टल नारायणपुर (छ.ग.)
१५२२. श्री शशिकांत बी. नेरे, वज्रधारा सोसायटी,वड़ोदरा (गुज.)
१५२३. श्री मनीष अग्रवाल, डभरा, जि. जांजगीर-चांपा (छ.ग.)
१५२४. श्री प्रहलाद अग्रवाल, ट्रान्सपोर्ट नगर, कोरबा (छ.ग.)
१५२५. श्री गिरीश गहलोत, विराजपुर, जिला - मेशान (गुज.)
१५२६. श्री जवाहर लाल नेगी, बी.-७/४/१, न्यू शिमला (हि.प्र.)
१५२७. श्री कैलाश प्रकाश गग्गर, १०२/३-एक्स. जोधपुर (राज.)
१५२८. प्रो. अशीष पात्र, बी.एम.४२९महारजपुर, ग्वालियर (म.प्र.)
१५२९. प्रो. अशीष पात्र, चन्द्रकोना टाऊन, पश्चिम मिदनापुर
१५३०. कु. कमलेश आचार्य, बैंक कालौनी, रतलाम (म.प्र.)
१५३१. डॉ. भगवान शरण भारद्वाज, सिंधु नगर, बरेली (उ.प्र.)
१५३२. डॉ. ओम प्रकाश कश्यप, लभांडी, रविग्राम,रायपुर (छ.ग.)
१५३३. श्री अनिल सरोदे, विवेकानन्द निदाम, ग्वालियर (म.प्र.)
१५३४. डॉ. सुजाता भथवाल, अवनी ऑक्सफ़ोर्ड, कोलकाता
१५३५. श्री रजीव बैद, ८७, बंगुर एवेन्यु, कोलकाता (पं.ब.)
१५३६. श्री एन. डी. अग्रवाल, कॉके रोड, राची (झारखण्ड)
१५३७. श्री यादवेन्द्र प्रताप सिंह, ट्रांसपोर्ट नगर कानपुर (उ.प्र.)
१५३८. श्री मनोज कुमार अग्रवाल, छुरी, जिला - कोरबा (छ.ग.)
१५३९. शिवशरण श्रीवास्तव, सेंट्रल बैंक, नारायणपुर (छ.ग.)
१५४०. श्री राधाकृष्ण सिंह, मामाफोर्ड गंज, इलाहबादग (उ.प्र.)

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द
५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता - रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी आत्मस्थानन्द, स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी मुमुक्षानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द , स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी अभिरामानन्द और मुक्तिदानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द

विज्ञापन

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५२ दिसम्बर २०१४ अंक १२

सारदा वन्दना

जय माता श्रीसारदा जय मंगल की धाम ।
तेरे दोउ पद कमल में बारम्बार प्रणाम ।।
प्रेम-दया की जाह्नवी जग जननी महारानी ।
तुम सीता माँ राधिका दुर्गा देवि भवानी ।।
जय-जय जय-जय सारदा माता ।
रामकृष्ण-संगिनी विख्याता ।।
श्यामासुता गृह लक्ष्मीरूपिणी ।
प्रगटी देवी जग-जन वन्दिनी ।।
रामचन्द्र पितु गोद विनोदिनी ।
अष्ट सखी तव नित मनरंजिनी ।।
गाँव में सारू सबको प्यारी ।
जन-मन नंदिनी अतीव न्यारी ।।
ठुमुक-ठुमुक करे सबकी सेवा ।
मात-पिता-गुरु-पूजन देवा ।।
दक्षिणेश्वर माँ काली-अंचल ।
पति-सेवा करे जप-तप पल-पल ।।
श्यामपुकुर महातप-स्थाना ।
लाख जप नित करे माँ ध्याना ।।
नीलाम्बर भवन माँ जब रहहीं ।
तब यज्ञ पचतपा तहँ करहीं ।।
स्नेह सुरसरि सारदा, नाशत सब संताप ।
जाके सुमिरत कबहुँ नहीं व्यापे मन में पाप ।।

पुरखों की थाती

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।।४२६

–जिसका दूसरे लोग गुणगान करते हैं, वह गुणहीन होकर भी गुणी हो जाता है; (परन्तु) स्वयं अपने ही गुणों का बखान करनेवाला यदि इन्द्र भी हो, तो छोटा बन जाता है ।

परोऽपि हितवान-बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ।।४२७

– यदि कोई पराया होकर भी हमारा हित करता है, तो वह मित्र है; और यदि कोई मित्र होकर भी अहित करता है, तो वह पराया है। जैसे अपने शरीर में पैदा होनेवाला रोग अहितकर होने से पराया है, जबकि वन में पैदा होनेवाली औषधि उपकारी होने से मित्र है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ।।४२८।।

– जो पीठ पीछे काम बिगाड़ता हो और मुँह पर मीठी-मीठी बातें करता हो, ऐसे मित्र को त्याग देना चाहिए, क्योंकि वह भीतर से विष और ऊपर से दूध भरे हुए घड़े के समान है।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थम् इदं शरीरम् ।।४२९।।

– वृक्ष परोपकार के लिए फलते हैं, नदियाँ परोपकार हेतु बहती हैं, गायें परोपकार के निमित्त दूध देती हैं और हमारा यह शरीर भी केवल परोपकार करने के लिए ही मिला है।

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों, व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में कहीं-कहीं उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का संकलन अँग्रेजी में 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक से और बँगला में 'आमि विवेकानन्द बोल्छी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुये। दोनों ग्रन्थों के सहयोग एवं कुछ विशेष सामग्री के साथ वर्तमान संकलन 'विवेक-ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

गुरु को लोग अवतार कह सकते हैं अथवा जो चाहें मानकर धारणा करने की चेष्टा कर सकते हैं। परन्तु भगवान का अवतार हर कहीं और किसी भी समय नहीं होता। एक ढाका में ही सुना है, तीन-चार अवतार पैदा हो गये हैं! ...

इतनी दूर जाकर भला मैं उन महापुरुष (नाग महाशय) का जन्मस्थान न देखूँगा? नाग महाशय की स्त्री ने मुझे कितनी ही स्वादिष्ट वस्तुएँ बनाकर खिलाईं। उनका मकान कैसा सुन्दर है! मानो शान्ति का आश्रम है। वहाँ जाकर एक तालाब में तैरा भी था। उसके बाद आकर ऐसी नींद लगी कि दिन के ढाई बज गये। मेरे जीवन में जितनी बार गाढ़ी निद्रा लगी है, नाग महाशय के मकान की नींद उनमें से एक है। नाग महाशय की स्त्री ने पुनः खूब स्वादिष्ट भोजन कराया और एक वस्त्र दिया। उसे सिर पर लपेटकर ढाका की ओर रवाना हुआ। देखा, नाग महाशय के चित्र की पूजा होती है। उनकी समाधि-स्थान को भलीभाँति रखना चाहिए। जैसा होना चाहिए, अभी वैसा नहीं हुआ। ...

साधारण लोग क्या उनके जैसे महापुरुष को समझ सकते हैं? जिन्हें उनका संग प्राप्त हुआ, वे धन्य हैं। ...

शिलांग पहाड़ बहुत ही सुन्दर है। वहाँ चीफ कमिश्नर मिस्टर कॉटन के साथ साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने मुझसे पूछा, "स्वामीजी, यूरोप और अमेरिका घूमकर इस दूरवर्ती पर्वत प्रान्त में आप क्या देखने आये हैं?" कॉटन साहब जैसे सज्जन व्यक्ति प्राय: देखने में नहीं आते। उन्होंने मेरी अस्वस्थता की बात सुनकर सरकारी डॉक्टर भेजवाया था। वे सुबह-शाम दोनों समय मेरा समाचार लिया करते थे। वहाँ पर अधिक व्याख्यान आदि नहीं दे सका। शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो गया था। रास्ते में निताई ने बहुत सेवा की।

(कामाख्या) तंत्र-प्रधान अंचल है; एक 'हंकर' देव का नाम सुना, जो उधर अवतार मानकर पूजे जाते हैं। सुना है, उनका सम्प्रदाय बहुत व्यापक है। वह 'हंकर' देव शंकराचार्य का ही दूसरा नाम है या और कोई, समझ न सका। वे लोग विरक्त हैं – सम्भव है तांत्रिक संन्यासी हों अथवा शंकराचार्य का ही कोई सम्प्रदाय विशेष हो। ...

उस देश में लोग मेरे खाने-पीने के प्रश्न को लेकर बड़ी चर्चा किया करते थे। कहते थे – "यह क्यों खायेंगे; या अमुक के हाथ का क्यों खायेंगे, आदि-आदि।" इसलिए कहना पड़ता था – "मैं तो संन्यासी फकीर हूँ – मेरा नियम क्या? तुम्हारे शास्त्र में ही कहा है – **चरेन्-माधुकरीं वृत्तिम् अपि म्लेच्छ-कुलादपि** (भिक्षा-वृत्ति के लिए निकलने पर म्लेच्छ-कुल से भी भिक्षा ग्रहण की जाती है)।[१३]

शिलांग, अप्रैल, १९०१ : (दमा का भयंकर दौरा आने पर) ठीक है, यदि मृत्यु भी आ जाती है, तो उससे क्या अन्तर पड़ता है? जो कुछ दे गया, वह पन्द्रह सौ वर्षों के लिए पर्याप्त है![१४]

बेलूड़ मठ, १५ मई, १९०१ : पूर्वी बंगाल तथा आसाम का दौरा कर हाल ही में लौटा हूँ। पहले की तरह अबकी बार भी मैं अत्यन्त थक चुका हूँ और मेरा स्वास्थ्य टूट चुका है।[१५]

बेलूड़ मठ, ३ जून, १९०१ : यह ठीक है कि मेरा स्वभाव हमेशा से ही तेज है, खासकर आजकल बीमारी में वह कभी-कभी बहुत ही भयंकर हो उठता है, परन्तु तुम निश्चित जानना कि मेरा प्यार कभी नष्ट नहीं होने वाला है।[१६]

बेलूड़ मठ, १४ जून, १९०१ : असम जाकर मुझे संकटग्रस्त होना पड़ा था। मठ की जलवायु में मैं कुछ-कुछ स्वस्थ हो रहा हूँ। असम के शैलावास शिलांग में मुझे ज्वर आने लगा था और श्वास की बीमारी तथा 'एलबुमिन' की शिकायत बढ़ गयी थी। मेरा शरीर फूलकर प्राय: दुगुना हो गया था। मठ में आते ही ये सारी शिकायतें घट चुकी हैं। इस वर्ष भयानक गर्मी है; किन्तु सामान्य रूप से वर्षा शुरू हुई है और हमें आशा है कि शीघ्र ही जोरों से मौसमी वर्षा प्रारम्भ होगी। इस समय मेरी कोई योजना नहीं है; पर बम्बई प्रदेश से

ऐसा आग्रहपूर्ण आमंत्रण मिल रहा है कि सम्भवत: शीघ्र ही एक बार मुझे वहाँ जाना पड़ेगा। ऐसा विचार है कि एक सप्ताह के अन्दर ही हम लोग बम्बई-भ्रमण शुरू कर देंगे। ...

हमें अपने जीवन में इतना अनुभव प्राप्त हुआ है कि अब हम लोग जल के बुद्‌बुदे के समान इन उपाधियों के द्वारा आकृष्ट नहीं होते – 'जो', क्या यह सच नहीं है? कुछ महीनों से मैं सारी भावुकताओं को दूर कर देने की साधना में लगा हूँ; अत: मैं यहीं रुक जाना चाहता हूँ। अब मैं विदा चाहता हूँ। माँ का यही निर्देश है कि हम लोग एक साथ कार्य करेंगे। इससे अब तक बहुत-से लोग उपकृत हुए हैं और भविष्य में भी होंगे तथा और भी सभी लोग उपकृत होते रहेंगे। अपने स्वार्थ की ओर ध्यान रखकर कार्य करना व्यर्थ है, ऊँची कल्पनाएँ भी व्यर्थ ही हैं ! माँ अपने मार्ग की व्यवस्था स्वयं कर लेंगी।[१७]

बेलूड़ मठ, जून का अन्तिम भाग, १९०१ : मैंने अपने देश के मैदानी अंचलों की भयंकर गरमी को साहसपूर्वक सहन किया है और अब अपने देश की प्रलयंकारी वर्षा का सामना कर रहा हूँ। क्या तुम जानती हो कि मैं किस प्रकार विश्राम ले रहा हूँ? मेरे पास कुछ बकरियाँ, भेड़ें, गायें, कुत्ते और सारस हैं। सारे दिन मैं उनकी देखभाल करता रहता हूँ ! क्या यह सुखी होने का प्रयास नहीं है, क्यों? व्यक्ति उसी प्रकार दुखी भी क्यों न रहे, जबकि दोनों बकवास हैं? यह सब केवल समय काटने के लिये है।

चिन्ता मत करना, उद्विग्न मत होना, मेरे लिये तो मेरी ''माँ'' ही रक्षक तथा आश्रय हैं; और सब कुछ शीघ्र ही ठीक हो जायेगा, इतना अच्छा कि जितना कि मैंने अपने सबसे प्रिय सपनों में भी कल्पना नहीं की थी।[१८]

बेलूड़ मठ, १९०१ : यह काली ही लीलारूपी ब्रह्म हैं। क्या तुमने श्रीरामकृष्ण का 'साँप का चलना और साँप का स्थिर भाव', नहीं सुना? ... अबकी बार स्वस्थ होने पर हृदय का रक्त देकर माँ की पूजा करूँगा। रघुनन्दन ने कहा है –**नवम्यां पूजयेत् देवीं कृत्वा रुधिरकर्दमम्** – अब मैं वही करूँगा। माँ की पूजा हृदय का रक्त देकर करनी पड़ती है, तभी वे प्रसन्न होती हैं।[१९] **(क्रमशः)**

सन्दर्भ –

१३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. १७६-७७; **१४.** The Life of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, 1989, Vol 2, P. 590; **१५.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३७३; **१६.** वही, खण्ड ८, पृ. ३७५; **१७.** वही, खण्ड ८, पृ. ३७६; **१८.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. १६०; **१९.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. १९४।

श्रीमाँ सारदा की आरती

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

ॐसारदा माँ जय जय, माँ श्यामासुता जय जय।
जय माँ संकटहारिणी,शुभदायिनी जय जय।।१।।
तुम हो जग की माता, पालनकारिणी माँ।
सबकी भाग्यविधायिनी, मंगलकारिणी माँ।।२।।
आदिशक्ति जगदम्बा, ब्रह्मशक्ति हो तू।
ईश्वर - लीलासंगिनी, सर्वशक्तिमयी तू ।।३।।
अष्ट - दुर्गा तव सखियाँ, तुम्हीं महामाया।
विद्या, भैरवि, योगिनी, कर सब पर दाया।।४।।
क्षमा, दया, तितीक्षा, हैं भूषण तेरे।
सन्त-भक्तगण पूजित पद-पंकज तेरे।।५।।
राग-द्वेष विनाशिनी, तमहारिणी चित्त की।
ज्ञानप्रकाशिनी अम्बे, सुखदायिनी सुत की।।६।।
दक्षिणेश्वर सिद्धपीठ में तू ही विराज करे।
तुम काली माँ शताक्षी दुर्गा साज धरे।।७।।
तू ही राम की सीता, तू कृष्ण की राधा।
रामकृष्ण की सारदा, हर मम सब बाधा।।८।।
गौर कपूर-सी काया, दिव्य रूप झलके।
तुम वात्सल्यमयी हो, सुत-स्नेह ललके।।९।।
गहन समाधि विराजित मुक्त कृष्ण कुन्तल।
सौम्य शान्ति आभामय निर्मल वदन कमल ।।१०।।
सहज प्रेममय जीवन, स्नेह-सुधा सरसे।
नित संतति पर मैया, तेरी कृपा बरसे।।११।।
नरेन्द्रादि शिष्यगण करें तेरीं सेवा।
सज्जन - दुर्जन की माँ, दे भक्तिमेवा।।१२।।
गौरी-गोलाप सेवित राधु योगमाया।
जिस पर कृपा हो तेरी, उसे न ग्रसे माया ।।१३।।
पशु-पक्षी-नर-मुनि गण, माता तू सबकी।
माँ-माँकी मृदु-ध्वनिसे, गुँजे नभ-अवनी ।।१४।।
जहँ जैसे तहँ तैसे, मूल तन्त्र तेरा।
दोष-दृष्टि को नाशे, शान्ति-मन्त्र तेरा।।१५।।
तू ब्रह्माण्ड में व्यापिनी, तू ही जगद्धात्री।
तू वांछित फलदातृ, तू ही कालरात्रि ।।१६।।
सभी लोक-भुवनों में कोई नहीं मेरा।
तेरा गोद ही केवल आश्रय है मेरा।।१७।।
सारदा माँ की आरती जो कोई नर गावे।
शान्ति-भक्ति और मुक्ति शुद्ध दृष्टि पावे ।।१८।।

(गीत-विहाग-तीनताल)

अब जयरामबाटी चलो मन।
शान्ति मिलेगी, भक्ति मिलेगी, पाओगे माँ का प्रेम धन।
ब्रह्मस्वरूपिणी सारदा माई, मुक्ति बाँटने यहाँ पर आई।
जीवों को ले अपनी गोद में, छुड़ाती है जनम-मरण ।।
निज सन्तान देख हरषाती, उनके सब दुख-पाप नशाती।
आँचल में ले दुलार कहती, आओ आओ मेरे बेटे,
आओ तुम हो मेरे स्वजन ।।

धर्म-जीवन का रहस्य (५/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

महाभारत काल इसी दुर्भाग्य से पीड़ित था कि हर व्यक्ति शब्द को ही सत्य मानता था। चाहे वे भीष्म हों या द्रोण, चाहे कर्ण हों या द्रौपदी या भीम, हर व्यक्ति ने यह निश्चित कर लिया था कि वे शब्द को ही सत्य मानकर उसकी रक्षा करेंगे।

अनर्थ एक बार तो चरम सीमा तक जा पहुँचा। कर्ण-युधिष्ठिर का युद्ध हुआ। युधिष्ठिर लड़ने में उतने कुशल नहीं थे। कर्ण ने उन्हें घायल कर दिया, तो भागकर बेचारे शिविर में लौट आये। घाव पर मरहम-पट्टी होने लगी। अर्जुन ने सुना कि महाराज घायल हो गये हैं, तो भगवान श्रीकृष्ण से कहा – रथ तुरन्त ले चलिए, देखूँ महाराज की क्या स्थिति है। जब वे शिविर में पहुँचे तो युधिष्ठिर को लगा कि अर्जुन कर्ण का वध करके आया है। उन्होंने अर्जुन का बड़ा स्वागत किया। बोले – अर्जुन, कर्ण ने मुझे बड़ा कष्ट दिया था, तुम धन्य हो कि तुमने उसका वध करके मेरी पीड़ा को दूर कर दिया। अर्जुन बोला – नहीं महाराज, अभी कर्ण का वध नहीं हुआ है। अभी तो मैं आप को देखने चला आया।

सुनकर युधिष्ठिर को इतना बुरा लगा कि कहने लगे – तुम्हारी वीरता को धिक्कार है। तुम व्यर्थ ही गाण्डीव धारण करते हो। अब स्वयं तो भाग आए और उसके लिये अर्जुन को धिक्कार रहे हैं। स्वयं ही यदि इतने योद्धा थे, तो लड़कर मर जाते। स्वयं तो भाग आये और अब अर्जुन की आलोचना करने लगे। वही दोहरा मापदण्ड ! समाज में ऐसा ही होता है। – तुम क्या हो? तुम्हारा गाण्डीव किस काम का? अर्जुन ने सुना, तो युधिष्ठिर का सिर काटने के लिए तलवार खींच ली। भगवान कृष्ण ने कहा – यह सब क्या है? क्या कर रहे हो तुम? अर्जुन ने कहा – महाराज, यदि ये मेरी निन्दा करते तो मैं कुछ न कहता, पर मैंने जीवन के प्रारम्भ में ही प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि कोई मेरे गाण्डीव की निन्दा करेगा, तो मैं उसका सिर काट लूँगा। तो मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आज युधिष्ठिर का सिर काट लूँगा। खैर, भगवान कृष्ण वहीं थे और उन्होंने स्थिति को सम्भाल लिया। भगवान कृष्ण और भगवान राम, हैं तो दोनों एक ही भगवान, परन्तु दोनों में एक महान अन्तर है।

भगवान कृष्ण को वस्तुत: उस युग में समझने वाला कोई था ही नहीं। वे जो बात कहते थे, वह परम्परा से हट कर होती थी। यह सत्य भगवान राम और भगवान कृष्ण का एक ही है। भगवान कृष्ण भी यह नहीं मानते कि तुम्हारे मुँह से निकल गया कि गाण्डीव की निन्दा करने वाले का सिर काट लेंगे, तो युधिष्ठिर का सिर काट लेने से ही सत्य की रक्षा होगी। भगवान कृष्ण ने अपनी विलक्षण शैली में कहा – ठीक है, तुमने यही तो कहा है न कि मैं मार डालूँगा, तो मारने का अर्थ केवल किसी का सिर काट लेना ही नहीं है। हर व्यक्ति के लिए मृत्यु की अलग-अलग परिभाषा है। बड़ों के लिए यदि कोई कठोर शब्द कह दिया जाय, तो वही उन बेचारों के लिए मृत्युदण्ड हो गया। तुम इनको दो-चार कड़वे शब्द सुना दो। अर्जुन बोले – महाराज, यदि आप कह रहे हैं तो ठीक ही है, आपकी बात मैं भला कैसे नहीं करूँ? उन्होंने युधिष्ठिर को दो-चार कड़वे शब्द बोल दिये। अर्जुन को लगा कि चलो, मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी हो गई, पर युधिष्ठिर रुष्ट होकर वन में जाने लगे कि अर्जुन ने हमें इतने कठोर शब्द कह दिये, अत: अब मैं यहाँ रहूँगा ही नहीं। भगवान ने उनको भी पकड़कर समझाया कि आप ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि अर्जुन की भावना आपका अनादर करने की नहीं थी। उसने तो केवल अपने शब्द की रक्षा के लिए ऐसा किया। मानो यह बताने के लिए ऐसा किया कि बड़े-बड़े व्यक्ति भी कभी-कभी कितने भ्रान्त हो सकते थे।

धर्म का जो रूप भगवान राम प्रस्तुत करने आए थे, उसकी भी यही विशेषता थी। उन्होंने लक्ष्मण से कहा – अच्छा, जब मैं सुग्रीव को मारने के लिए कह रहा हूँ, तो मेरा क्या उद्देश्य हो सकता है? भगवान का सूत्र बड़ा सांकेतिक है। बोले – लक्ष्मण, तुम तो जानते हो कि बालि का वध भी मैंने किया, तो उसके प्रति मेरा कोई द्वेष नहीं था। कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं था। बालि के वध का उद्देश्य तुम जानते ही हो। बालि ने भी समझ लिया था। उसे तो मैंने जीवित रहने के लिए भी कहा था। वहाँ भगवान का रूप यही है। पहले प्रतिज्ञा कर दिया कि एक बाण से बालि का वध कर देंगे। और बाण चलाने के बाद जब उससे बातचीत

हुई, तो थोड़ी देर में ही प्रसन्न होकर कहने लगे – तुम शरीर से अचल हो जाओ, जीवित रहो –

अचल करौं तनु राखहु प्राना ।। ४/१०/२

श्रीराम का सत्य यदि केवल शब्दगत सत्य होता, तो कह देते कि बस, सत्य की रक्षा करने के लिए बालि को मार दिया । उन्होंने तो पहले ही कह दिया था कि एक बाण से मारूँगा । पहले एक बाण चलाकर मारा भी और अब कहते हैं – बालि, तुम जीवित रहो । तो सूत्र क्या है? भगवान राम का तात्पर्य यह था कि मुझे व्यक्ति बालि का वध नहीं करना था । उसके जीवन में जो अभिमान का अतिरेक हो गया था, उसी का नाश करना था । उसमें अति अभिमान आ गया था और उससे अधर्म का आचरण हो रहा था । वस्तुत: उस अभिमान को मिटाना ही मेरा उद्देश्य था –

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।
नारि सिखावन करसि न काना ।।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी ।
मारा चहसि अधम अभिमानी ।। ४/९/९-१०

और बाण लगने के बाद यदि बालि का वह रोग दूर हो गया, तो क्या मैं केवल अपने शब्द की रक्षा के लिए उसे मारूँगा? नहीं, ऐसा नहीं होगा । मेरा उद्देश्य व्यक्ति को नहीं, अभिमान को मिटाना था । भगवान ने बालि से यही कहा – तुममें तो बस एक अभिमान का ही दुर्गुण आ गया था, यदि अभिमान मिट गया है, तो तुम जीवित रहो ।

पर वह बालि लम्बी छलाँग वाला था, जरा ऊँचा ही निकल गया । सुग्रीव सीढ़ी वाले साधक हैं और बालि थोड़ा लम्बी छलाँग वाला था । वैसे तो उसके जीवन में दोष आ गया था, पर अन्तिम क्षण में उसने जो बात कही, उसे सुनकर प्रभु भी मुस्कुरा उठे । उसने कहा – प्रभु, जब आप कहते हैं कि बालि तुम जीवित रहो, तो मुझे लगता है कि आप मुझ पर पूरी तरह प्रसन्न नहीं हैं । यदि भगवान किसी से कहें कि तुम जीवित रहो, तो लगेगा कि भगवान उस पर कितने प्रसन्न हैं, परन्तु बालि बड़ी ऊँची स्थिति में पहुँच चुका है । आपने बालि की वह प्रार्थना पढ़ी होगी । वह बोला – प्रभु, आपका कार्य तो परम कल्याणकारी होता है । आपने मुझे अभिमानी कहा था, तो हमारी वाणी तथा व्यवहार का अभिमान मिट गया होगा, पर आपको लगा होगा कि इसमें अभी देहाभिमान बना हुआ है, तभी तो कह रहे हैं कि तुम जीवित रहो ! यदि मैं देह होता, यदि देह को आत्मा मानता होता, तभी तो ऐसा कहता कि मेरा शरीर रहना चाहिए । पर आप प्रसन्न हैं, तो आपके दर्शन से मेरा देहाभिमान दूर हो गया । अब मुझे शरीर की कोई आवश्यकता नहीं –

मोहि जानि अति अभिमान बस
प्रभु कहेउ राखु सरीरही ।। ४/९

प्रभु प्रसन्न हो गये, बालि क्षण भर में देहाभिमान से इतना ऊपर उठ गया । और शरीर कैसे छोड़ा? गोस्वामीजी बोले – मानो हाथी के गले में फूल की एक छोटी-सी माला पड़ी हो और यदि वह माला टूटकर गिर जाय, तो जैसे उसे पता भी नहीं चलता, वैसे ही बालि शरीर को छोड़ देता है –

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ।। ४/१०

प्रभु बालि को मुक्त करके अपने धाम भेज देते हैं –

राम बालि निज धाम पठावा ।। ४/११/१

उधर सुग्रीव के प्रसंग में भगवान ने मानो संकेत में लक्ष्मण से कहा – जब मैंने कहा कि जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, उसी बाण से कल मैं सुग्रीव को मारूँगा, तो वहाँ मारने का अर्थ उसके अभिमान को मारना था, जैसा कि बालि के सन्दर्भ में था । भगवान बोले कि यह बेचारा बड़ा डरपोक स्वभाव का है, अन्यथा मेरी शरण में आता भी नहीं । वह बालि के भय से ही मेरी शरण में आया । मैंने उसे शरण में लिया और बालि का वध कर दिया । बालि के मरने से उसका डर तो दूर हो गया, परन्तु ज्योंही उसका डर दूर हुआ, त्योंही इसने मुझे भी दूर कर दिया । यह एक बड़ी समस्या आ गई कि भय दूर करने वाले को भी भुला दिया । भगवान बोले – मेरा उद्देश्य तो वही है, जो बालि के प्रसंग में था । वस्तुत: जैसे बालि को शरण में लेना ही मेरा उद्देश्य था, भले ही वह कठोर बाण के द्वारा हो, वैसे ही इसे भी बुलाना है, पर इसके लिए कोई बाण ही आवश्यक थोड़े ही है । तुम जाओ, और उसे डराओ । कई लोग तो मरते हैं, पर कई लोग भय से मरे जैसे हो जाते हैं । सुग्रीव के लिए तो इतना ही यथेष्ट है । तुम्हें देखते ही उसके प्राण सूख जायेंगे । वह मरेगा तो नहीं, पर भय से आतंकित हो जायेगा । उसके सन्दर्भ में उसे मारने का अर्थ बस इतना ही है ।

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना ।
धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ।। ४/१८/८

लक्ष्मणजी समझ गये । हाँ प्रभु, मैं आपके आदेश का पालन करता हूँ । आज्ञा दीजिए । पर प्रभु तो बड़े कौतुकी हैं । लक्ष्मण से बोले – इस बात को न भूल जाना कि सुग्रीव जितना डरपोक है, उतना ही भगोड़ा है । ऐसा न डराना कि भागकर कहीं दूर चला जाय । ऐसा डराना कि इधर मेरी ही ओर आये, कहीं और न जाने पाये –

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।। ४/१८

उनका डराने का उद्देश्य भगाना नहीं है, बल्कि पास बुलाना है। कितना बढ़िया सूत्र है ! डराने का उद्देश्य क्या होता है? आप किसी को डराते हैं कि यह भाग जाये और भगवान राम कहते हैं कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो डर के मारे ही पास आते हैं। भगवान कहते हैं कि यदि कोई प्रेम से पास आ जाय, तो भी अच्छा और भय के मारे आ जाय, तो वह भी ठीक है। उसका स्वभाव तो हर काम डर से ही करने का है, वह प्रेम की भाषा नहीं समझेगा –

भय बिनु होइ न प्रीति ।। ५/५७

उद्देश्य एक ही है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कहा – अरे, वह तो मेरा सखा है। उसको मैं पास बुलाना चाहता हूँ। इस प्रकार भगवान श्रीराम मानो 'सत्य' का – उद्देश्यमूलक सत्य का एक स्वरूप उपस्थित करते हैं और जब उन्होंने सुग्रीव की वैराग्यपूर्ण अर्थात् निवृत्ति या त्यागप्रधान वाणी को स्वीकार नहीं किया, तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी वाणी असत्य या निरर्थक थी, बल्कि भगवान समझ गये कि यह प्रवृत्ति मार्ग का ही अधिकारी है और इसे इसी मार्ग से क्रमश: आगे की ओर ले चलना है। लक्ष्मण और सुग्रीव की स्थिति भिन्न-भिन्न है।

तो भगवान के जो विविध अवतार और विभिन्न रूप हैं, उनका स्वरूप ध्रुव के सन्दर्भ में आता है, जहाँ उसे अपमान के कारण दु:ख हो गया है। अपमान से दुखी होना तो व्यक्ति का स्वभाव ही है। भले ही गीता में लिखी हुई हो – मान और अपमान में सम रहना चाहिए – **मानापमानयोस्तुल्य:** (१४/२५)। पर साधारणतया व्यक्ति के जीवन में और कभी-कभी तो बहुत बड़े व्यक्तियों के जीवन में भी अपमान से दु:ख हो जाता है। उसको मोड़ने की पद्धति ही ध्रुव की माँ की विशेषता थी। सुनीति का मार्ग कल्याणकारी था। वे कह सकती थीं कि तुम थोड़े बड़े हो जाओ, फिर बलपूर्वक सिंहासन पर बैठकर तुम सुरुचि को बन्दी बना लेना और अपने अपमान का बदला लेना। वे ऐसा उपदेश भी दे सकती थीं और समाज में दिया भी जाता है। पर वह माँ धन्य थी ! उन्होंने कहा कि इस अपमान से मुक्त होने का उपाय तो यह है कि तुम भगवान का आश्रय लो। यदि लोक का अपमान तुम्हें भगवान की ओर ले जाता है, यदि पद प्राप्ति की इच्छा तुम्हें भगवान की ओर ले जाती है, तो तुम धन्य हो जाओगे। इस प्रकार ध्रुव मानो प्रवृत्ति मार्ग के द्वारा भगवान को पाते हैं। धन्य हो जाते हैं। एक मार्ग यह है।

दूसरा भगवान कपिल का मार्ग है। अवतारों में परम निवृत्तिपरायण भगवान कपिल का अवतार है। वे तो इतने निवृत्तिपरायण हैं कि वे स्वयं भी पूरा जीवन संन्यास में स्थित रहे। बाल्यावस्था में ही उन्होंने संसार का परित्याग कर दिया, वन में चले गये; और इतना ही नहीं, आप लोगों ने भागवत में पढ़ा या सुना होगा, उन्होंने अपनी माता देवहूति को महान उपदेश दिये। तात्पर्य यह कि जो स्वभावत: वैराग्ययुक्त हैं, जिनके अन्त:करण में विशेष लालसा नहीं है, उनके लिए भगवान कपिल द्वारा प्रदत्त निवृत्ति मार्ग का उपदेश है; और जिनके जीवन में कामना है, उनके लिए यह ध्रुव का प्रसंग है। मनु के वंश की ये दो शाखाएँ हैं।

परन्तु मनु ने एक तीसरे अवतार का चुनाव किया। इसका एक बड़ा सांकेतिक तात्पर्य है। प्रवृत्ति और निवृत्ति, मानो ये दो छोर हो गये। भगवान कपिल प्रवृत्ति मार्गवालों के लिए उपयोगी नहीं है और ध्रुव का चरित्र निवृत्ति मार्ग के पथिकों के लिए उपयोगी नहीं है। तो मनु ने जिन तीसरे अवतार की आवश्यकता का अनुभव किया, वे हैं श्रीराम-अवतार। भगवान श्रीराम के लिए उन्होंने वन में जाकर साधना की और ईश्वर उनके सामने प्रगट हुए।

प्रश्न उठता है कि भगवान राम का चरित्र प्रवृत्ति मार्ग के लिए उपयोगी है या निवृत्ति मार्ग के लिए। हरिश्चन्द्र के चरित्र में आप सत्य की महिमा पढ़ लेते हैं कि सत्य के लिए कितना बड़ा त्याग किया जा सकता है। शिवि के प्रसंग में आप पढ़ते हैं कि शरणागत की रक्षा के लिए कितना बड़ा त्याग किया जा सकता है। दधीचि के प्रसंग में आप पढ़ते हैं कि परोपकार के लिए कितना बड़ा बलिदान किया जा सकता है। ये सभी महापुरुष, चाहे शिवि हों, दधीचि हों, या हरिश्चन्द्र, ये कोई चरित्र नहीं हैं। इनमें कोई एक गुण है और उसी को महान गुण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर आप उनके समग्र चरित्र को पढ़ें। हरिश्चन्द्र के चरित्र का जैसा वर्णन आता है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनके चरित्र में अनेक दुर्बलताएँ थीं। यदि कोई अपने जीवन में धर्म के किसी एक अंग को स्वीकार करके अपनी पूरी क्षमता के द्वारा उसे साकार करता है, तो उसे महापुरुष मानकर उसकी पूजा की जाती है। परन्तु अपेक्षा है समग्र धर्म को साकार करने की और यह आप भगवान श्रीराम-अवतार के रूप में और भगवान श्रीरामकृष्ण के चरित्र में पाते हैं। जब उन्होंने विविध साधना-पद्धतियों से सिद्धि की अनुभूति का परिचय दिया, तो उसका भी यही अर्थ था। उन्होंने इस अवतार के द्वारा मानो इस सत्य का प्रतिपादन किया कि विभिन्न मान्यताओं, साधन-साधनाओं को लेकर विवाद की जरूरत नहीं है, व्यक्ति किसी भी मार्ग से धन्यता प्राप्त कर सकता है। भगवान श्रीरामकृष्ण ने इसी प्रकार अपने चरित्र में उन पद्धतियों को प्रगट किया।

(क्रमश:)

सारगाछी की स्मृतियाँ (२६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पृष्ठों में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – यदि हम लोग निवृत्तिमूलक कार्य ही करते हैं, तो फिर क्यों हम लोगों में इतने प्रकार के भेद हैं और क्यों कोई-कोई संघ छोड़कर चले जाते हैं?

महाराज – कर्म का स्वभाव ही ऐसा है। कर्म में कितने प्रकार के लोगों की आवश्यकता पड़ती है।

मैंने एक साधु के हाथ में अंगूठी देखी। मैं वृद्ध साधु था, उसे समझाना कर्तव्य है, ऐसा सोचकर उसे थोड़ा-बहुत समझाया। किन्तु देखा कि वह साधु नहीं समझा। तब मैं चुप हो गया।

एक व्यक्ति यहाँ आकर सात वर्ष रहा। मुझे भोजन देता था। गीता का दसवाँ अध्याय ठीक से पढ़ा था। मैंने परीक्षा ली थी, वह सब अच्छी तरह से समझता था। किन्तु क्या होगा ! बचपन से ही कोई खराब संस्कार था। अन्त में देखा कि उसका रोग ठीक ही नहीं हो रहा है। उसने कहा कि घर में माँ को कुछ हुआ है, उसकी व्यवस्था करनी होगी। घर में इतने लोग थे, उसको इतनी चिन्ता क्यों थी ! दूसरे भी बहुत से लक्षण दिखाई दिये। तब मैंने उसे समझाकर घर जाने के लिये कहा।

किन्तु देखो, मैंने तुम लोगों से जो इतनी बातें कही हैं, तुम लोग इसके एक बाल के बराबर भी सुधार नहीं कर सकते और इन लोगों की निन्दा करना भी ठीक नहीं है। व्यक्ति जो भी कार्य करता है, वह विवश होकर ही करता है, वह प्रकृति के अधीन है। इसलिये अपने आप को सम्भालो। अपने भीतर देखो कि ये सब प्रस्फुटित हुये हैं कि नहीं। इस जगत से बिना भागे और भाग कर मन के भीतर प्रवेश नहीं करने से मन को शान्ति नहीं मिलेगी। यह संसार ऐसे ही पड़ा रहेगा, तुमको इसकी समस्याओं का समाधान नहीं करना है। संन्यासी उस ओर से बहुत सावधान रहेगा। अपने सिद्धान्त के सम्बन्ध में बहुत दृढ़ रहेगा। डर क्या है? सिद्धान्त के साथ मेल नहीं होने से बाहर माधुकरी भिक्षा करके खाना। इस प्रकार मन में दृढ़ शक्ति चाहिये।

प्रश्न – महाराजजी, क्या आपके मन की अवस्था पहले से ही हमेशा उच्च-स्तर पर रहती थी?

प्रेमेश महाराज – अरे नहीं नहीं! मैं बचपन में शान्त था, इसलिये सभी लोग मुझे साधु बाबा कहा करते थे। लेकिन घर में मुझे भगवान गोविन्द जी की सेवा करने का सुअवसर मिला था। पत्तियों से आँखें बनाकर, उसमें चन्दन से आँखों की पुतली बनाया करता था। सबेरे ग्यारह बजे तक इन्हीं सब कार्यों में समय व्यतीत करता था। मेरे भैया ने जीवन में मुझे एक बार ही सही समय पर सन्ध्या करने को कहा था।

साधुओं को पूर्वाश्रम के बारे में कितना सावधान रहना पड़ता है। मैं अपनी भाभीजी की बहुत श्रद्धा करता था। वे मठ में आयी थीं। वे मुझे पहले 'आप' कहकर बात कर रही थीं। उसके बाद उन्होंने अचानक 'तुम' कहकर आशीर्वाद की मुद्रा में मेरे सिर पर हाथ रख दिया। हालाँकि वे वृद्धा थीं, किन्तु दूसरे लोग क्या सोचेंगे, सोचकर मैं संकोच में पड़ गया। एक बार मठ में एक ब्रह्मचारी को दो महिलाओं के साथ बातचीत करते देखा गया, उनमें से एक युवती थी। लोग आलोचना करने लगे। बाद में पता चला कि वे लोग उसकी माँ और बहन हैं। इसलिये साधुओं को ऐसे रहना होगा, जिससे लोग संदेह न कर सकें।

१५-६-१९६०

महाराज – जैसे मकड़ी जाल बिछाकर उसके भीतर बैठी रहती है, वैसे ही जीव भी देह-मन-बुद्धि को फैलाकर उसके भीतर बैठा हुआ है।

प्रश्न – मनुष्य का जीवन कितना अनिश्चित है! किसका अन्न कहाँ है, कोई बोल नहीं सकता है, बड़े ही आनन्द की बात है।

महाराज – तुम युवा हो, सब जगह आनन्दमय देख रहे हो, मैं वृद्ध हूँ, सर्वत्र दुखमय देख रहा हूँ।

प्रश्न – मानस-पुत्र क्या है?

महाराज – मन में संकल्पजनित पुत्र को 'मानसपुत्र' कहते हैं। **''मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।''** केवल ब्रह्माजी को ही मानस-पुत्र हो सकता है, दूसरे किसी को नहीं होता। राखाल महाराज (स्वामी

ब्रह्मानन्द जी) के बारे में जानते हो तो?

ठाकुरजी ने देखा कि गोद में एक बालक है। वे चौंक गये – "माँ, मेरा लड़का?" तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका मानस-पुत्र अर्थात् उनके मन में संकल्प उठा था कि एक लड़का उनके साथ रहे, इसलिये लगता है कि उनका संकल्प राखाल के रूप में मूर्तिमान हुआ। राखाल महाराज ईश्वर कोटि के थे। उनका जन्म तो सामान्य रूप से नहीं हुआ था। जैसे माँ कहती हैं, 'मैं तुम्हारे घर में आयी हूँ'। ठीक वैसे ही इन लोगों का भी है। ठाकुरजी और राखाल में मातृभाव का सम्बन्ध था, वे गोद में खेलते थे, कंधे पर चढ़ते थे, दूध पीते थे, ऐसा तो कोई नहीं करता था। इसलिये (राखाल महाराज को) मानस-पुत्र कहा गया है।

प्रश्न – तो क्या स्वामी विवेकानन्द जी मानसपुत्र नहीं हैं?

महाराज – नहीं, जिस प्रकार राखाल महाराज के साथ ठाकुरजी का व्यवहार था, दूसरे किसी के साथ वैसा नहीं था।

प्रश्न – शब्द से इस संसार की सृष्टि हुई है। यह कैसे ?

महाराज – प्रकृति की सृष्टि की पहली अवस्था में अ, ऊ और म शब्द की ध्वनि हुई। उसी शब्द-तरंग से सृष्टि हो रही है। दक्षिण में एक साधु थे, उन्हें समाधि होती थी, वे कहा करते थे – (हुम) शब्द हुआ। स्वामी रामकृष्णानन्द महाराज की उनसे भेंट हुई थी। उन्होंने ही उनकी बातें लिखी हैं।

३०-४-१९५८

संध्या ७.२० बजे स्वामी विशुद्धानन्द महाराज मैदान में कुर्सी पर बैठे हुये थे। वे गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द जी) की बात करने लगे। उन्होंने कहा – मैंने ब्रह्मानन्द महाराज, शिवानन्द महाराज और रामकृष्णानन्द महाराज इन तीनों महाराज लोगों का अधिक सान्निध्य प्राप्त किया है। ये (गंगाधर महाराज) तो यहीं पर ही रहते थे।

एक दिन मैं ब्रह्मानन्द महाराज जी का शरीर दबा रहा था। उनका शरीर बहुत मोटा और कड़ा था। वे कुश्ती लड़ा करते थे। मैं दबा-दबा कर थक गया। मैं बचपन से ही थोड़ा दुर्बल था, खेल-कूद नहीं करता था। मैं शरीर दबाते-दबाते पसीना-पसीना हो गया और सोच रहा था कि कब महाराज जी कहेंगे – 'रहने दो'। तभी मन-ही-मन सोचने लगा — महाराज जी ठाकुरजी के मानस-पुत्र हैं, मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ। यह पसीना साधु-सेवा में निकल रहा है। गृहस्थ लोग संसार के लिये दिन-रात श्रम कर कितना पसीना बहाते हैं। आज मैं कितने पुण्य के फलस्वरूप महाराजजी की सेवा कर पा रहा हूँ। तुरन्त मेरी सारी थकावट दूर हो गयी। जिस प्रकार जोर से दबाना शुरू किया था, उसी प्रकार दबाने लगा। कुछ देर बाद महाराजजी ने कहा – 'रहने दो'।

१८-६-१९६०

कुछ दिनों से एक ब्रह्मचारी बहुत से कार्यों में संलग्न हो गया है और अनेकों समस्याओं में फँस गया है। उसका कार्य भी अच्छी तरह से नहीं हो रहा है तथा बहुत लोगों के साथ सम्बन्ध खराब हो रहा है। ब्रह्मचारी के द्वारा प्रेमेश महाराज जी को सरल भाव से सभी बातें स्पष्ट रूप से कहने के बाद महाराज जी ने उसे सान्त्वना देते हुये कहा कि संन्यास का अर्थ है – इस जगत की सभी चीजों में किसी प्रकार भी उत्तेजित न होना, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह जगत जल जाय, मर जाय, किन्तु तुम किसी तरह भी उत्तेजित नहीं होना, तभी संन्यास है। यदि दूसरे देश में मार-काट होती है, तो हम लोग उत्तेजित नहीं होते हैं, कोई-कोई खुश होते हैं। किन्तु यदि भारतवर्ष में समस्या होती है, तो हमलोग उत्तेजित हो जाते हैं। साधुता और लोक-व्यवहार दोनों अलग-अलग वस्तुयें हैं। कोई-कोई साधुता में अच्छे हैं, किन्तु व्यवहार करना नहीं जानते हैं। उन्हें बात करना नहीं आता है।

प्रश्न – जो साधु अच्छे हैं, क्या उनका व्यवहार भी अच्छा नहीं होगा? शास्त्र तो यही कहता है – 'मार्दवं ह्रीरचालम्'।

महाराज – देखो, व्यक्ति को बल-पूर्वक संन्यासी सजाने से क्या होगा ! अन्दर में दो मन हैं। अवचेतन मन भोग चाहता है। वह सांसारिक लोगों के घरों में घूमेगा और भक्त के लड़के को गोद में लेकर प्यार करता है, इस प्रकार संसार भोग करेगा। रूपये का स्पर्श – कितना विलक्षण है! इसी हाथों से ४०,००० रूपया व्यय हुआ है एक आदमी बोल रहा है और गद्‌गद् हो रहा है। यह जगत इन सब चीजों से भरपूर है, यदि मुक्ति पाना चाहते हो, तो इन सबसे अलग हो जाओ। मुक्ति का एकमात्र मार्ग है – इस देह-मन-बुद्धि के पार चले जाना। यदि एक दिन तुम श्रीरामकृष्ण का चिन्तन करते-करते समझ जाते हो कि तुम अलग हो और यह शरीर-मन-बुद्धि अलग हैं, तो सम्पूर्ण जीवन में उतना कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। **(क्रमशः)**

समय-पालन का महत्व

स्वामी आत्मानन्द

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.) के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने आकाशवाणी हेतु सामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक वार्ताएँ लिखी थीं, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित होती रहीं हैं तथा काफी लोकप्रिय भी हुई हैं। इनकी उपादेयता को देखकर इन्हें आकाशवाणी, रायपुर के सौजन्य से क्रमश: 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

मेरे एक मित्र हैं। समय के बड़े पाबन्द हैं। आज एक सफल उद्योगपति हैं। शिक्षक थे। वे अपनी सफलता का श्रेय समय की पाबन्दी को देते हैं। एक बार उन्होंने किसी उच्च अधिकारी से मिलने का समय लिया था। जिस समय उन्हें मिलने जाना था, उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी। स्वाभाविक ही किसी का भी मन कहता कि बाद में मिल लेंगे, अभी ही मिलना उतना जरूरी नहीं है। उन्होंने मन को कोई बहानेबाजी नहीं करने दी और उस भंयकर वर्षा में भीगते हुए वे समय पर ही मिलने के लिए पहुँच गये। अधिकारी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, पर साथ ही उन्हें प्रसन्नता भी हुई कि कम-से-कम एक व्यक्ति तो उन्होंने देखा, जो समय का इतना पाबन्द था। बस, उन्होंने मेरे मित्र का काम तुरन्त कर दिया और तब से वे एक-एक करके सफलता के सोपानों पर चढ़ते गये।

समय की पाबन्दी जीवन के सभी क्षेत्रों में काम की है। यदि हम समय पर उठने, सोने, खाने-पीने और अपने काम-काज की आदत डालें, तो हम महानता प्राप्त करने की ओर एक सार्थक कदम उठा सकते हैं। इसके द्वारा अल्प समय में कार्य करने की क्षमता पैदा होती है। संसार में जिन व्यक्तियों ने महानता अर्जित की है, उनमें से अधिकांश का जीवन समय-पालन की एक सुन्दर गाथा रही है। महात्मा गाँधी इसके ज्वलन्त उदाहरण रहे हैं। उनकी समय की पाबन्दी के बहुत से किस्से हैं, जो यही दर्शाते हैं कि उन्होंने अपने जीवन की क्रियाओं को किस प्रकार समय के द्वारा नियंत्रित कर लिया था।

प्रत्येक व्यक्ति बड़ा तो बनना चाहता है, पर उसके लिए वह किसी प्रकार की साधना नहीं करना चाहता। छल-बल या धन के जोर पर किसी को बड़प्पन नहीं मिला करता। जो मिला-सा दिखायी देता है, वह बालू की नींव पर बने मकान के समान तनिक से आघात से ढह जाता है। सच्चा बड़प्पन बाधाओं में तपकर अधिक निखरता है। ऐसा बड़प्पन प्राप्त करने का प्रथम सोपान है – समय की उपासना।

समय की उपासना हमारे आलस्य और जड़ता को दूर करती है, तमोगुण के आधिक्य को काटती है और बुद्धि को सतेज बनाती है। बहुधा देखा जाता है कि यदि समय पर काम न हो, तो काम टल जाता है और हम दीर्घसूत्रता के शिकार हो जाते हैं। कहा जाता कि विश्वविजेता नेपोलियन एक मिनट के विलम्ब से पहुँचने के कारण ही वाटरलू में पराजित हो गया था।

जो समय की कीमत नहीं समझता, वह वास्तव में मानव-जीवन का सही मूल्यांकन नहीं कर पाता। ऐसे व्यक्ति के लिए जीवन में कोई उद्देश्य या लक्ष्य नहीं हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो वह पशुओं से किसी भी प्रकार उच्चतर जीवन नहीं बिताता। पशु काल की गणना नहीं करता और इसलिए उसमें काल का आयाम नहीं होता। पर मनुष्य काल की गणना करता है। काल की पकड़ का पहला कदम है – समय की पाबन्दी।

धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में भी समय-पालन अनिवार्य बताया गया है। यदि मैं साधना के क्षेत्र में पदार्पण करने का इच्छुक हूँ, तो निश्चित समय पर प्रतिदिन की साधना शीघ्रतर फलवती होती है। कुछ लोग पूछते हैं कि समय की निश्चितता पर इतना जोर क्यों? इसका उत्तर यह है कि कोई काम यदि रोज एक निश्चित समय पर किया जाय, तो ठीक उस समय हमारा मन उस कार्य की ओर अपने आप उन्मुख होने लगेगा। उदाहरणार्थ, यदि मुझे अपराह्न में ४ बजे चाय पीने की आदत है, तो ४ बजते ही मेरे मन में चाय की इच्छा जाग्रत हो जायेगी। यही तर्क निश्चित समय पर साधना करने या अन्य कोई काम करने पर भी लागू होता है। उससे हमारा मन अधिक एकाग्र हो जाता है और उसकी छिपी हुई क्षमता अधिकाधिक प्रकट होती है।

समय की पाबन्दी वस्तुत: मन के केन्द्रीकरण का अभ्यास है। मन में असीम सम्भावनाएँ निहित हैं। इन सम्भावनाओं को प्रकट करने का साधन मन का केन्द्रीकरण ही है। समय की पाबन्दी का अभ्यास पहले-पहल कष्टप्रद मालूम होता है, परन्तु धैर्यपूर्वक यदि उसे कोई साध लेता है, तो उसके लिए विश्व अपना खजाना खोल देता है। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन 'विवेक-ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

४३. इसी का नाम माया है

हम सबका भी बस एक ही हाल है। एक प्राचीन कथा है। एक दिन नारद ने श्रीकृष्ण से पूछा, "प्रभो, मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ।"

कुछ दिनों बाद श्रीकृष्ण नारद को साथ लेकर एक मरुभूमि की यात्रा पर गये। बहुत दूर तक चलने के बाद श्रीकृष्ण बोले, "नारद, मुझे प्यास लगी है। क्या तुम मेरे लिये थोड़ा-सा पानी ला सकते हो?"

नारद बोले, "प्रभो, मैं अभी जाकर आपके लिये जल ले आता हूँ।"

यह कहकर नारद चले गये। कुछ दूरी पर एक गाँव था। नारद जल की खोज में उसी गाँव में प्रविष्ट हुए। उन्होंने एक मकान का दरवाजा खटखटाया। एक परम सुन्दरी कन्या ने द्वार खोले। उसे देखते ही नारद सब कुछ भूल गये; यह भी कि प्रभु जल के लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं और कदाचित् उसके अभाव में उनके प्राण भी निकल रहे होंगे। वे सब कुछ भूलकर उस कन्या के साथ बातें करने लगे। सारे दिन वे उस घर में बैठकर कन्या से बातें करते रहे। बातचीत धीरे-धीरे प्रेम में परिणत हुआ। नारद ने कन्या के पिता से उसके साथ विवाह की अनुमति माँगी। उनका विवाह सम्पन्न हुआ। दोनों वहीं रहने लगे। आगे चलकर उनकी सन्तानें भी हुईं।

इसी प्रकार बारह साल बीत गये। ससुर की मृत्यु हुई और नारद उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो गये। वे सुख-समृद्धि की अपनी परिकल्पना के अनुसार अपने बाल-बच्चों, खेती-बारी और पशुधन आदि के साथ बड़े सुख-चैन का जीवन बिताते रहे। तभी उस इलाके में बाढ़ आयी।

एक रात नदी में पानी इतना बढ़ा कि दोनों किनारों के ऊपर से पानी बहने लगा और पूरा गाँव बाढ़ में डूब गया। मकान गिरने लगे; मनुष्य तथा पशु बह-बहकर डूबने लगे और सब कुछ जल-प्लावन में डूबने-उतराने लगा। नारद भी जान बचाने निकल पड़े। उन्होंने एक हाथ से पत्नी तथा दूसरे हाथ से दो बच्चों को पकड़ा और एक बालक को अपने कन्धे पर बिठाकर उस भयंकर बाढ़ से बच निकलने की चेष्टा करने लगे। कुछ कदम चलने के बाद एक तेज लहर आयी और उनके कन्धे पर बैठा हुआ शिशु पानी में गिरकर बह गया। नारद हताश होकर आर्तनाद कर उठे। उस शिशु को बचाने के प्रयास में एक अन्य बालक भी उनके हाथ से छूटकर बह गया। अब तक जिस पत्नी को वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर पकड़े हुए थे, उसे भी तरंगों के वेग ने उनके हाथ से छीन लिया। वे स्वयं तट पर जा गिरे और बड़े शोकपूर्वक कातर स्वर में रोने और विलाप करने लगे।

तभी उनके पीछे से एक कोमल आवाज आयी, "वत्स, जल कहाँ है? तुम एक घड़ा जल लेने गये थे न, मैं खड़ा-खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम्हें गये आधे घण्टे से भी अधिक समय बीत चुका है।"

"आधा घण्टा !" नारद चिल्ला उठे।

उनके मन के भीतर तो बारह वर्ष बीत चुके थे; और आधे घण्टे के भीतर ही उनके मन में इतनी सारी घटनाएँ घट चुकी थीं ! इसी को माया कहते हैं ! (२/७५-७६)

४४. जीव घूमता जगत में, ज्यों कोल्हू के बैल

भारत में कुछ कोल्हुओं में तेल पेरने के लिये बैल जोते जाते हैं। उसमें बैल को गोल-गोल घुमाया जाता है। बैल के कन्धे पर रखे हुए जुए का एक सिरा आगे की ओर बढ़ा होता है। उसके एक छोर पर थोड़ी-सी घास बाँध दी जाती है। बैल की आँखों को इस प्रकार बाँध देते हैं कि वह केवल सामने ही देख सके। बैल अपनी गर्दन बढ़ाता है और घास खाने की कोशिश करता है। उसके आगे बढ़ने के प्रयास से उसके गर्दन से बँधा लकड़ी का लट्ठा आगे खिंचता है। बैल दुबारा और फिर तिबारा प्रयास करता है और इसी प्रकार प्रयास करता जाता है। घास उसके मुँह में कभी नहीं आती, परन्तु वह उसे पाने की आशा में गोल-गोल चक्कर लगाता रह जाता है। उसके इस प्रयास से कोल्हू में तेल पिरता जाता है।

इसी प्रकार हम लोग भी प्रकृति, धन-दौलत तथा स्त्री-बच्चों के जन्मजात दास हैं। हम निरन्तर एक काल्पनिक घास के गुच्छे को पाने के लिए आगे बढ़ते रहते हैं और असंख्य जन्मों तक चक्कर लगाते हुए भी अपनी आकांक्षित वस्तु को कभी नहीं पाते। (३/१०२)

माँ की मधुर स्मृतियाँ – १३३

मेरे जीवन में श्रीमाँ की कृपा

विभूतिभूषण घोष

१९४४ ई. के नवम्बर में प्रकाशित लेखक के 'श्रीमाँ' नामक पुस्तक के प्रथम तीन अध्याय हम २००६ के अंकों में प्रकाशित कर चुके हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' के खण्ड २ से इस अंश का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। इसका सम्पादन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वे ही सीता हैं

जयरामबाटी में माँ पुराने मकान की दीवार पर हाथ रखे खड़ी हैं। सुबह मैंने कहा, "माँ, कल (सिंहवाहिनी मन्दिर के सामने) श्रीराम का कितना सुन्दर भजन सुना। माँ, राम कैसे थे?" माँ, 'गोविन्द, गोविन्द' उच्चारण करते हुए बोलीं, "इस बार और भी बड़े।" – फिर स्थिर-निष्पन्द हो गयीं।

बागबाजार के मकान में माँ की सरस्वती पूजा

१९११ ई.। माँ वाराणसी से कलकत्ते लौटी हैं। राधू, भूदेव आदि माँ के साथ हैं। नलिनी, छोटी मामी आदि सभी लोग कलकत्ते में हैं। सरस्वती पूजा है। भूदेव के आग्रह पर कुमारटोली से सरस्वती की एक छोटी-सी मूर्ति लायी गयी। माँ ने ही पूजा की। उसके बाद मैं माँ-सरस्वती को प्रणाम करने चला, तो सामने खड़ी माँ को प्रणाम करके सरस्वती को प्रणाम किया। माँ ने कहा, "तुम्हें सद्बुद्धि हो।" यह पूजा बागबाजार में मायेरबाड़ी के ठाकुरघर में हुई थी।

माँ का गीता पाठ-श्रवण और व्याख्या

एक अन्य दिन की घटना है। २१ नवम्बर, १९११ ई. को वाराणसी में कालीपूजा के बाद, लक्ष्मीनिवास में दिन के लगभग दस बजे माँ बोलीं, "विभूति, तुम मुझे दसवाँ अध्याय – 'विभूति योग' सुनाओ।" मैं पढ़ने लगा। "मासानां मार्गशीर्षोऽहम्" पढ़ने के बाद मैंने पूछा, "माँ, मार्गशीर्ष का क्या अर्थ है?" माँ ने उत्तर दिया, "अग्रहायण मास" (विभूति मन-ही-मन माँ की परीक्षा ले रहा था)। पढ़ते समय वे बोलीं, "छोटी बहू कल सारी रात भला-बुरा कहती रही – ननदजी मर जायँ, ननदजी मर जायँ। विभूति, छोटी बहू नहीं जानती कि मैं मृत्युंजय हो गयी हूँ।"

माँ के साथ विष्णुपुर यात्रा

लालबाँध के घाट से माँ घोड़ागाड़ी से चलीं, (मैं कोच बॉक्स में बैठा)। (रास्ते में) गाड़ी के दोनों घोड़ों के सामने मोटी जनेऊ पहने नंगे-बदन दो ब्राह्मण सोये थे। देखकर माँ बोलीं, "विभूति, ब्राह्मण, ब्राह्मण!" मैंने कहा, 'हाँ माँ, ये रूप भट्टाचार्य महाशय हैं। ठाकुर जब शिहोड़ में राजाराम परिवार के फौजदारी मुकदमे में गवाही देने पालकी से वन के बीच स्थित लालबाँध के घाट के पास आये। कहार लोग पालकी उतारकर मुरमुरे खा रहे थे। ठाकुर पादुका पहने उसी के किनारे-किनारे टहल रहे थे और उबटन की गन्ध पाकर सोच रहे थे – बाँध के घाट के जल से उबटन की गन्ध क्यों आ रही है! तभी माँ-मृण्मयी की कमर तक पानी में डूबी हुई चिन्मयी मूर्ति का दर्शन मिला। वहीं इन्होंने देवी सर्वमंगला की स्थापना की।"

माँ दिन-तिथि मानती थीं

एक अन्य दिन वे बोलीं, "विभूति, तुमने मुझे मना नहीं किया? तुम्हारे मना करने से नहीं जाती। अमजद ने बताया – विभूति दा ने सुना – छिपकली टिकटिक कर रही थी।"

माँ के साथ विभूति की काशीयात्रा

खोका महाराज ने कहा – सभी काशी जा रहे हैं, विभूति नहीं जायेगा? गणेन से कहा था – विभूति काशी जायेगा। १७ कार्तिक को काशीयात्रा शुरू हुई। माँ वर्धमान स्टेशन से जगी हुई थीं। प्रणाम करके बोला, "माँ, काशी जाना हुआ।" – "बेटा, विश्वनाथ तुम्हें खींच रहे हैं।"

सुबह पटना स्टेशन पर माँ से बोला, "यही बुद्ध का पाटलीपुत्र है।" भानु बुआ जप कर रही हैं। ऐसा लगा मानो माँ को भानु बुआ का निरन्तर जप करने का भाव पसन्द नहीं आया। बोलीं, "काशी में कितने ही देवताओं को प्रणाम करती फिरोगी? ठाकुर कहते थे, कितने देवताओं को प्रणाम करोगी? सभी देवताओं को एक घट में रखकर उस घट को ही प्रणाम करने से सारे देवताओं को प्रणाम हो गया।"

काशी में माँ मुझे (किरण दत्त के) मकान में छोड़कर दुर्गा-मन्दिर, गंगा-स्नान आदि करने जातीं। कहतीं, "विभूति तुम मेरा घर देखना।" बाबू के घोड़ेगाड़ी में जातीं। एक दिन आश्रम से देवव्रत बाबू (स्वामी प्रज्ञानन्द) आये। माँ स्नान

करने जा रही थीं। उनका सूखा मुख देखकर, वे गली के मोड़ से लौटकर आयीं और देवव्रत बाबू को प्रसाद दिया।

माँ का विभूति को आशीर्वाद

एक दिन माँ ने कहा, ''ठाकुर ने मुझसे कहा था – रुपये से दाल-भात होता है। विभूति, तुम रुपये लेकर क्या करोगे? जैसे पुलिया के नीचे से पानी बह जाता है, वैसे ही सुख-दुख तुम्हारे पैरों के नीचे से चले जायेंगे, तो भी साधु-वचन सत्य होगा।''

माँ का आशीर्वाद

माँ की जन्मतिथि। माँ नये मकान की चौकी पर बैठी हैं। किशोर फूल चढ़ाकर माँ को प्रणाम करने और कहने लगा, ''माँ, यह काशी के साधुओं का प्रणाम लीजिए, यह (बेलूड़) मठ के साधुओं का प्रणाम लीजिये, यह उद्बोधन के ...।'' मैंने तब तक प्रणाम नहीं किया था। ज्योंही प्रणाम करने चला, त्योंही माँ बोलीं, ''जितनी बहुएँ, बेटियाँ, बच्चे, बच्चियाँ हैं – तुम्हारे प्रणाम के साथ उन सभी का प्रणाम हो'' – कहकर तोते गंगाराम को दुलार करके माँ उठ गयीं।

एक अन्य दिन शाम को मैं उद्बोधन में माँ के पास गया। मति (मातंगिनी) ने माँ से कहा, ''माँ, इन लोगों ने गुप्त (स्वामी सदानन्द) की क्या ही सेवा की है!'' सुनकर माँ बोलीं, ''इन लोगों ने गुप्त की सेवा की है, अब इन्हें और तपस्या की क्या जरूरत?''

माँ का स्नेह जन्मदात्री माँ से भी बढ़कर

एक दिन दोपहर में भोजन करते समय मेरी जन्मदात्री माँ रोहिणीबाला घोष (पुराने मकान के दक्षिण पश्चिमी खम्भे के पास) खड़ी थीं। श्रीमाँ ने मुझे दाहिनी छोर पर खाने को बैठाया। वे रसोईघर में जा रही थीं, आ रही थीं और कुछ-न-कुछ लाकर दे रही थीं। मैं बड़ी देर तक खाता रहा, मेरी माँ सब देख रही थीं। वे माँ से बोलीं, ''माँ, विभूति यहीं रहे। मेरे पास (हाथ से दिखाकर) इतना-सा ही खाता है।'' सुनकर माँ ने कहा, ''विभूति की माँ, तुम मेरे लड़के को नजर मत लगाओ। मैं एक अकिंचन स्त्री हूँ, बच्चों को जो भी देती हूँ, ये उसे प्रेम से खाते हैं।'' एक दिन भोर में कलूपुकुर के किनारे माँ बोलीं, ''अपना लड़का (विभूति) किसी को मत देना। अच्छे कपड़े आदि पहनकर जब बाहर निकले, तब भी लड़का किसी को मत देना।''

आज मेरी जन्मदात्री माँ नहीं हैं। मैं पचीस वर्ष का हो गया हूँ। माँ ही सर्व कालों में, प्रत्येक क्षण अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि से मेरे जीवन की दिशा और गति को देखती रहेंगी।

जयरामबाटी में एक अन्य दिन मेरी जन्मदात्री माँ उनसे बोलीं, ''माँ, विभूति यहीं रहे, मेरे पास न जाय, पर आप एक काम कीजिये। आपका तीन हिस्सा रहे और मुझे एक हिस्सा दे दीजिये।''

माँ ने कभी भी किसी का दोष नहीं देखा

एक दिन माँ बोलीं, ''देख विभूति, मैं किसी के भी दोष नहीं देख पाती। गोलाप को ही देख न, ठाकुर ने एक दिन मुझसे पूछा, 'वह बालिका कैसी है?' ठाकुर ने रक्षा की, मैं बोली, 'मुझे तो उसमें कोई दोष नहीं दिखता।' विभूति! सचमुच ही तो, आज बाईस वर्ष हो गये, पर मुझे गोलाप का कोई भी दोष नहीं दिखा।''

माँ की स्मृति में ठाकुर की बातें

एक दिन माँ ने मुझसे कहा, ''दोपहर को (दक्षिणेश्वर में ठाकुर के कमरे में) जैसे मैं जाती थी, वैसे ही गयी, ठाकुर छोटी खाट पर बैठे थे और मैं कमरे की फर्श पर बैठी-बैठी झाड़ू लगा रही थी। कहीं कोई नहीं था। मैंने पूछा, 'मैं तुम्हारी कौन हूँ?' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, 'तुम मेरी माँ आनन्दमयी हो।' '' ○○○

चोर से शिक्षा

एक फकीर ने चर्चा के प्रसंग में कहा – मैंने हर व्यक्ति से कुछ-न-कुछ अवश्य सीखा है। इस पर एक व्यक्ति ने पूछ ही लिया – आपने चोर से क्या सीखा है? फकीर बोला – एक बार मैं चोर के घर ठहरा था। रात के समय चोर चोरी करने जाता था। जब वह लौटता, तब मैं पूछता – कुछ मिला? वह कहता – कुछ नहीं मिला। आज खाली हाथ लौटा हूँ, कल कुछ मिल जाएगा। दूसरे-तीसरे दिन भी मैं यही पूछता गया। रोज उसका यही उत्तर होता था। इस प्रकार पूरा एक महीना बीत गया। एक महीने तक चोर को कुछ नहीं मिला। मैंने सोचा – चोर रोज चोरी करने जाता है। सात-आठ घण्टे बिताता है। अपनी मधुर नींद का समय खो देता है, लेकिन कुछ न मिलने पर भी उसमें निराशा का कोई भाव नहीं आया। वह सदा कहता है कि आज नहीं, तो कल अवश्य मिलेगा। मैंने उससे यही सीखा है कि भक्ति के मार्ग में कभी निराश नहीं होना चाहिये।

प्रस्तुति – टी. प्रकाश (नवभारत टाईम्स,मुम्बई से साभार)

तुम जो चाहो हो सकते हो

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने सन्त गजानन अभियान्त्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव में दिया था। 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु उस लोकप्रिय व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद रायपुर की श्रीमती शुभदा ठाकुर और कुमारी प्रतिष्ठा ठाकुर ने किया है - सं.)

(गतांक से आगे)

संसार जिसमें हम रहते हैं

क्या इसका अर्थ यह है कि चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व के संघटन के लिये मनुष्य को तपस्वी या साधु बन जाना चाहिये तथा संसार का त्याग कर अपने आप को सबसे अलग कर एकान्तवास करना चाहिये?

नहीं। निश्चित रूप से नहीं। व्यक्ति इस संसार में रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, उन सभी जिम्मेदारियों को जो समाज ने उसे एक सामाजिक सदस्य होने के कारण उसके कंधों पर डाली हैं, उसका निर्वहन करते हुये भी अपना चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व का संघटन कर सकता है।

मुख्य बात यह है कि मनुष्य को स्वामी की तरह जीना चाहिये, अपनी इच्छाओं और भावनाओं का दास बनकर नहीं जीना चाहिये, जो छोटी-से-छोटी कठिनाईयों और चुनौतियों के सामने झुक जाता है। यदि हम चरित्रवान और सुगठित व्यक्तित्ववाला व्यक्ति बनना चाहते हैं, तो हमें चुनौतियों को स्वीकार करके कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

चरित्रवान एवं सुगठित व्यक्तित्व में आवश्यकता पड़ने पर आत्मत्याग करने की क्षमता होनी चाहिये।

इस संकट की स्थिति में हमें ऐसे कुपथ पर अग्रसर करनेवाले विचारों से बहुत अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है, जिसे आजकल अनेकों लोग हमें कहते रहते हैं कि आज इस संसार में प्रत्येक क्षेत्र में बेईमान और खराब लोग ही सम्पन्न और सुखी हैं। उनके पास धन, सम्पत्ति, सामर्थ्य और पद है तथा वे इस संसार में सुखी जीवन जीते हैं।

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि ईमानदार, नैतिक और अच्छे लोग बुरे बेईमान लोगों की तुलना में विभिन्न परिस्थितियों में गरीब होते हैं और इस संसार में बुरे लोगों के समान समृद्ध और उन्नत नहीं होते।

सर्वप्रथम हमें इस बात को आँख मूँदकर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। हमें ध्यानपूर्वक बुरे लोगों के जीवन को देखना और विश्लेषण करना चाहिये, जिन्होंने इस संसार में अस्थायी सफलता प्राप्त की है। जिस प्रकार भौतिक जीवन अमोघ नियम से प्रभावित होता है, उसी प्रकार नैतिक जीवन के भी कुछ अमोघ नियम हैं। हमें हमेशा यह याद रखना चाहिये कि हमारा विश्व एक ब्रह्माण्ड है, एक अव्यवस्थित स्थान नहीं है। कभी-कभी भले ही थोड़ी देर के लिये ही क्यों न हो, यह प्रतीत होता है कि यह अव्यवस्था ही प्रबल है। परन्तु निस्संदेह इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि इन सभी अव्यवस्थाओं, अराजकताओं और तथाकथित संपन्नता का अन्त दुखद और विध्वंसकारी होता है। दूसरी ओर कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे और नैतिक लोग कठिन परिस्थितियों में होते हैं, बड़ी दीनता का अनुभव करते हैं और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कठिन संघर्ष करते रहते हैं। किन्तु इन सबके बावजूद नि:सन्देह हमेशा यह सिद्ध होता रहा है कि अच्छे और नैतिक लोगों का जीवन सदा ही सफल और प्रबल रहा है। वे ही धरती के अद्वितीय विशिष्ट व्यक्ति हैं। प्राचीन काल के अवतार, संसार के संत-महात्माओं, ईसामसीह, बुद्ध, मध्यकाल के श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, और आधुनिक युग के श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि और श्रीअरविन्द आदि ने भी नि:सन्देह यही सिद्ध किया है कि हमेशा अच्छे और केवल अच्छे लोग ही सफल और प्रबल होते हैं। वर्षों से विभिन्न देशों के लाखों लोग इन महापुरुषों की शिक्षाओं और उपदेशों का अनुसरण करते आए हैं और एक सुखी और समृद्ध जीवन जी रहे हैं। वे ईमानदारी और अच्छाई के लिये नैतिकता के नियमों का दृढ़ रूप से पालन करते हैं और सच्चाई व अन्य जीवन-मूल्यों के साथ कभी समझौता नहीं करते।

सर्वप्रथम यदि हम अपने-अपने चरित्र का निर्माण और व्यक्तित्व का संघटन करना चाहते हैं, तो इसके लिये अटल विश्वास की नितान्त आवश्यकता है।

अब हमें अपने चरित्र निर्माण के कुछ महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक बिन्दुओं पर विचार करना चाहिये। यदि हम स्वयं के चरित्र को देखें और अपने विचारों और क्रिया-कलापों का विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि यह हमारे द्वारा निर्मित आदतों की गठरी है। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी प्रेरणादायी पुस्तक राजयोग में कहा है – ''आदत हमारा दूसरा स्वभाव है। यह हमारा प्रथम स्वभाव भी है और व्यक्ति का पूरा स्वभाव है, वह सब कुछ जो हम करते हैं, हमारी आदत का ही परिणाम है।''[१]

आदत कैसे बनती है? इसी पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द ने आदत बनने की प्रक्रिया का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। वे कहते हैं – "प्रत्येक क्रिया झील की सतह पर होने वाले स्पंदन की तरह है। स्पन्दन मर जाता है, तो और क्या शेष रह जाता है? संस्कार, प्रभाव ! जब ऐसे ही बहुत से संस्कार, प्रभाव मन में रह जाते हैं, तब ये संगठित होकर आदत बन जाते हैं।"

जब हम किसी कार्य को लम्बे समय तक लगातार करते हैं, तो यही हमारे व्यवहार में आ जाता है और हमारे व्यवहार का नियमित हिस्सा बन जाता है, इसे ही आदत कहते हैं। यदि हमारे विचार और क्रियायें अच्छे हैं, तो हमारा चरित्र अच्छा और यदि हमारे विचार और क्रियायें बुरे हैं, तो हमारा चरित्र बुरा बन जाता है।

यह हमारे लिये बड़ी सान्त्वना है, क्योंकि यह दिखाता है कि अपनी अच्छी और बुरी आदतों के निर्माता हम स्वयं हैं। अर्थात् हमारे पास अपनी आदतों को किसी भी समय बदलने की शक्ति है। अपनी आदतों को बदलकर हम अपने आप में किसी भी सीमा तक परिवर्तन ला सकते हैं, जो मानवीय ढंग से सम्भव है। स्वामीजी आगे कहते हैं – "जो कुछ भी हम हैं, हमारी आदत का ही परिणाम है। यह हमें सांत्वना देता है, क्योंकि यह हमारी आदत ही है, जिन्हें हम किसी भी समय बना या बिगाड़ सकते हैं।

जब हम अपने चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व संघटन के बारे में सोचते और निर्णय करते हैं, तो पाते हैं कि कुछ बुरी और अवांछित आदतें इस चरित्र-निर्माण के मार्ग में आ रही हैं। हमें इससे निराश या हतोत्साहित नहीं होना चाहिये। स्वामीजी ने हमें इन बुरी आदतों को जड़ से मिटाने के लिये रामबाण औषधि दी है। स्वामीजी कहते हैं, "बुरी आदतों को बदलकर ही उनसे मुक्ति पा सकते हैं। सभी प्रकार की बुरी आदतें, जो हमारे मन पर अपना प्रभाव डालती हों, उन पर अच्छी आदतों द्वारा ही हम नियंत्रण पा सकते हैं। सदा अच्छे कार्य करते रहो, निरन्तर सजग होकर पवित्र विचारों का चिन्तन करते रहो, उन आदतों के प्रभाव को कम करने का यही एकमात्र उपाय है। लगातार आदतों की पुनरावृत्ति ही चरित्र का सुधार कर सकती है।"

आइए, हम दृढ़ता के साथ अपने चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व संघटन लिये कटिबद्ध होकर दिन-रात सतत् कार्य करते रहें।

समय के प्रति सजगता

इस ब्रह्माण्ड में आकाश के नीचे जो कुछ भी है, सब काल के अधीन है। हम इस काल को आकाश से अलग नहीं कर सकते। ये सभी आपस में कपड़े की तरह घने गुथे हुए हैं। यदि हम धागे को निकाल दें, तो कपड़ा नहीं रह जाएगा और यदि कपड़ा को अलग कर दिया जाय, तो धागा नहीं रहेगा। उसी प्रकार समय और आकाश एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। हम समय को आकाश के बिना और आकाश को समय के बिना समझ नहीं सकते, उसकी धारणा नहीं कर सकते।

परन्तु आकाश की तुलना में हम समय को समझ सकते हैं, उसे पकड़ सकते हैं और अपने चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में इस समय का सदुपयोग कर सकते हैं। इसके लिये हमें सर्वप्रथम समय के बारे में सजग और सावधान रहना पड़ेगा। सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये हमारे जीवन में समय का प्रारम्भ रात में सोने के बाद जब सुबह उठते हैं, तब आरम्भ होता है और अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये इसका सदुपयोग करने के लिये अनवरत रात में सोने तक रहता है। यदि हम समय के प्रति बहुत सावधान, सतर्क नहीं हैं, तो हमारा यह समय नष्ट हो जायेगा और हम अपने जीवन में चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व-विकास का एक सुअवसर गँवा देंगे।

अपने जीवन के वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम समय का किस तरह से सदुपयोग करें? स्वामी विवेकानन्द के एक महान संन्यासी-शिष्य और रामकृष्ण संघ के छठवें अध्यक्ष ने, जो लोग जीवन में लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास कर रहे हैं, उनके लिये समय का सदुपयोग करने की कुंजी बतायी है। वे लिखते हैं, "मन स्वभावत: हमें परिश्रम और मेहनत करने से रोकता है, और उनसे बचने और हटाने के बहाने ढूँढ़ता रहता है। यह हमें अपने उद्देश्य से भटकाता है। यदि हम इसे किसी कार्य में व्यस्त नहीं रखते हैं, तो यह निरर्थक और विध्वंसकारी कार्यों में लगा रहता है। इसीलिये ठीक ही कहा गया है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। इसे नियंत्रण में रखने के लिये कुछ कड़े व कठोर नियमों का पालन करना चाहिये। विवेकपूर्वक विचार-विमर्श के बाद अपनी दिनचर्या का निर्धारण करें, जिसका पालन आपके लिये व्यावहारिक हो। इसके साथ ही यह दृढ़ निश्चय करें कि आप किसी भी परिस्थिति में हों, या कोई भी कार्य हो, आप अपनी बनायी दिनचर्या का पालन अवश्य करते रहेंगे। इस प्रकार की दृढ़ता और संकल्प आध्यात्मिक प्रगति के लिये आवश्यक है। भोजन, मनोरंजन, अध्ययन, व्यायाम, निद्रा, कार्य, ध्यान और आध्यात्मिक साधनायें, खेलकूद, हँसी-मजाक,

सभी प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी गतिविधियाँ, इन सबके लिये समय निर्धारित होना चाहिये। यदि आप अपना जीवन अनियंत्रित फैशन से व्यतीत करेंगे, तो वह व्यर्थ हो जाएगा। दिनचर्या निर्धारित करने के बाद आपको स्वयं को यह कहकर बार-बार समझाना होगा, चेतावनी देनी होगी, "देखो श्रीमान् ! आपको अच्छा लगे या न लगे, किन्तु आपको इन नियमों का पालन करना ही होगा।" कुछ समय तक आपका मन दुराग्रह और अव्यवस्था से उन कार्यों को पूरा करने में बाधा डालेगा और अलग-अलग दिशाओं में भागेगा। परन्तु आप कभी भी पराजय स्वीकार नहीं करें और अपने मन को समझाकर पुन: कार्य में लगावें। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि आपका कार्य ठीक से हो रहा है या नहीं? मन को नियन्त्रित करना किसी जंगली पशु को पालतू बनाने जैसा है। इसके लिये अनन्त धैर्य, उद्यम, पुरुषार्थ और प्रबल इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। जब मन को ज्ञात हो जाता है कि अब भागने का कोई रास्ता नहीं है, तब वह बन्दर चाल खेलना बंद कर देता है और आपके अधीन होकर आपका आज्ञाकारी बन जाता है। इसे ही 'अभ्यास योग' – सतत् अभ्यास का पथ कहते हैं। मन पर नियन्त्रण पाने का इसके अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं है।"[३]

मानव जीवन के किसी भी सार्थक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये समय के सदुपयोग का यही सबसे महानतम रहस्य और तकनीक है। हमें यह याद रखना चाहिये प्रत्येक व्यक्ति की दिनचर्या और योजना दूसरे से भिन्न होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी परिस्थितियाँ होती हैं, उसके अनुसार वह अपनी योजना बनाकर अपनी दिनचर्या का पालन करता है।

लेकिन हमें यह याद रखना चाहिये कि चाहे हम जीतें या हारें, अपनी दिनचर्या का दृढ़ता के साथ पालन करते रहें। हमें यह किसी भी कीमत पर करना चाहिये।

कार्य का टुकड़ों में विभाजन

प्रतिदिन हमें कार्य के एक ऐसे अंश को लेकर शुरु करना चाहिये जिसे हम समझते हैं कि वह निर्धारित समय में पूर्ण हो पाएगा। अपने लिये नियम बना लें – "**एक बार में एक काम**" और "**इसे समाप्त करें**"। इन दो नियमों के पालन से हम अपने दैनिक जीवन के कार्यों को पूरा करने में सक्षम होंगे, जिससे हमें अपार सन्तुष्टि मिलेगी। हम सुखी और सफल जीवन के दो महान शत्रुओं – तनाव तथा चिंता को पराजित करने में सक्षम होंगे।

आइए, हम अपने खोए हुए भाग्य को पुन: प्राप्त करें। कई बार हम अपनी अज्ञानता और लापरवाही के कारण अपने जीवन के कुछ सुनहरे अवसरों को गँवा देते हैं।

परन्तु हमें यह याद रखना चाहिये कि कुछ अवसरों का उपयोग करना, पूरे जीवन का उपयोग या जीवन के सभी अवसरों का उपयोग नहीं है। एक दृढ़ निश्चयी व्यक्ति जो कठोर परिश्रम तथा योजनाबद्ध तरीके से उसका पर्याप्त मूल्य चुकाने के लिये दीर्घ काल तक तैयार है, इस संसार में उसके जीवन में असंख्य ऐसे अवसर आते हैं, जिनसे वह अपने और समाज के लिये बड़े स्तर पर अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकता है। मान लीजिये यदि आप एक चिकित्सक बनना चाहते थे और लोगों को रोगों व बीमारियों से मुक्त कर उनकी सेवा करना चाहते थे, किन्तु विभिन्न कारणों से आप चिकित्सक नहीं बन पाए। इससे आपके भाग्य का द्वार बन्द नहीं हो जाता। आप एक व्यापारी, इंजीनियर, वकील, प्रबन्धन-विशेषज्ञ या किसी अन्य व्यवसाय से धन कमाकर, निस्वार्थ और सेवा-भाव से किसी चिकित्सक द्वारा किसी अच्छे अस्पताल में गरीबों की नि:शुल्क चिकित्सा करवा सकते हैं। यह कुछ सीमा तक आपके चिकित्सक होने की इच्छा को पूरा करेगा। दान की यह प्रक्रिया आपके जीवन को सार्थक बनाएगी तथा जिस समाज में आप रहते हैं, उस समाज के लिये वरदान सिद्ध होगी। यह एक उदाहरण मात्र है। इस प्रकार समाज-सेवा और समाज के कल्याण के लिये ऐसे असंख्य अवसर हैं।

इसलिये हमें विश्वास नहीं खोना चाहिये तथा निराश नहीं होना चाहिये।

दूसरों के लिये उपयोगी बनें।

अच्छे तथा सार्थक चरित्र के लिये स्वार्थी होना सबसे बड़ा अभिशाप है। इतना ही नहीं, एक स्वार्थी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अच्छी तरह संघटित नहीं कर पाता। एक चरित्रवान और सुगठित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का जीवन उसके सभी मित्रों के लिये उपयोगी होना चाहिये, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय, जाति, धर्म या पन्थ के हों। दूसरों के प्रति नि:स्वार्थ सेवा और शर्तहीन प्रेम ही एक चरित्रवान तथा संघटित व्यक्तित्व की विशेषता होती है।

इसलिये मेरे युवा-भाइयों और बहनों ! आइए हम संकल्प करें कि आज से ही हम अपने चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व-निर्माण के किसी भी अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगे। ○○○ **समाप्त**

---

१. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. १२३; २. वही, पृ. १२३; ३. परमार्थ प्रसंग, स्वामी विरजानन्द, पृ. ६२, प्र. सं;

स्वयंसेवक कैसा हो?

स्वामी सुहितानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने १८ जून, २०१४ को बेलूड़ मठ में आयोजित अखिल भारतीय स्वयंसेवक मार्गदर्शन शिविर में दिया था। इस उपयोगी व्याख्यान को पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं।)

सर्वप्रथम मैं रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह संघाध्यक्ष महाराजगण - स्वामी स्मरणानन्द जी एवं स्वामी प्रभानन्द जी को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ। यहाँ उपस्थित सभी वरिष्ठ साधुओं को मेरा प्रणाम। सभी साधु-भ्रातृवृन्द, भक्तवृन्द, स्वयंसेवकों, अतिथिगण एवं अन्य उपस्थित सज्जनों का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ।

बेलूड़ मठ के इस पवित्र प्रांगण में कदाचित हम पहली बार रामकृष्ण संघ के सहयोगी स्वयंसेवकों के प्रति अपने विचारों के आदान-प्रदान करने के लिए एकत्रित हुए हैं। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का प्रत्येक आश्रम अपने आप में अन्य आश्रमों से भिन्न है। प्रत्येक की अपनी एक विशिष्टता है। आश्रम से जुड़े अनेक भक्तों में से कुछ लोग आश्रम में सेवा प्रदान करने हेतु विशेष रूप से अग्रसर होते हैं। इनमें से कुछ तो इतने समर्पण भाव से सेवा करते हैं कि हम उन्हें अपना ही मानने लगते हैं। कभी-कभी हम स्वयं ही उन्हें सेवा देने के लिए कहते हैं और वे भी हमारे इस इस प्रेमपूर्वक अनुरोध पर सेवा कर स्वयं को धन्य समझते हैं।

प्रत्येक स्वयंसेवक भी अपने आचरण, कार्य और क्षमता की दृष्टि से अनुपम है। परन्तु अच्छी बात यह है कि उनमें किसी प्रकार की स्पर्धा अथवा ईर्ष्या का भाव नहीं है। वे एक साथ ऐसे कार्य करते हैं, जैसे वे सभी आश्रम की छत्रछाया के नीचे एक बड़े परिवार के सदस्य हैं।

स्वयंसेवक हमारे आश्रमों के प्रति क्यों आकृष्ट होते हैं? क्योकि वे जानते हैं कि आश्रम उनके सूक्ष्म शरीर का ध्यान रखता है। सूक्ष्म शरीर अर्थात् उनका मन, उनकी बुद्धि और उनका आध्यात्मिक जीवन। एक दिन काशीपुर में श्रीरामकृष्ण देव ने 'श्रीम' से कहा था, 'तुम मुझसे कुछ अपेक्षा नहीं करते, फिर भी यहाँ आना पसन्द करते हो। तुम यदि कुछ दिन नहीं आये, तो मुझे भी तुम्हारी चिन्ता होती है।' इस प्रकार स्थूल रूप से सेवा करते-करते स्वयंसेवकों को साधुओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। साधुओं का स्वयंसेवको से सान्निध्य का अर्थ है उनके मन, बुद्धि तथा आध्यात्मिक जीवन के विकास के प्रति सजग रहना। इस प्रक्रिया में आश्रम और स्वयंसेवक दोनों एक विशेष बन्धन में बन्ध जाते हैं – **परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।**

श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामीजी के अनुयाई तीन प्रकार के हैं – (क) साधु (ख) भक्त और (ग) भाव प्रचार आश्रम। साधु इस भावधारा के संरक्षक और मुख्य इकाई के रूप में हैं। यह स्वाभावत: आशा की जाती है कि उनका जीवन और कार्य दूसरों के लिए आदर्शमय हो। दीक्षित-भक्तों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे एक अनुशासित जीवन व्यतीत करें, क्योंकि उनकी जीवनचर्या देखकर ही उनके सम्पर्क में आनेवाले लोग वैसा जीवन यापन करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। भावप्रचार केन्द्र, जो मुख्य रूप से गृहस्थों द्वारा संचालित हैं, उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे मूल भावधारा के प्रति एक सहायक भावधारा के रूप में कार्य करें। प्रत्येक श्रेणी के लोगों से सामान्यत: यह आशा की जाती है कि वे स्पर्धामुक्त और विशेषाधिकार-रहित जीवन यापन करेंगे।

स्पर्धामुक्त अर्थात् दूसरों की सफलता पर वे ईर्ष्या न करें और विशेषाधिकार-रहित अर्थात् आश्रम में या आश्रम के बाहर समाज से किसी विशेष सुख-सविधा की अपेक्षा न करें। वे स्वयं के ही पुरुषार्थ, कौशल और निपुणता के बल पर विकास करेंगे।

अब प्रश्न यह है कि स्वयंसेवक कैसे होने चाहिए? वे स्वयं ही भावधारा की सेवा करने को अग्रसर हुए हैं। स्वयंसेवक उपरोक्त तीन श्रणियों के अन्तर्गत नहीं आते। वे अपने आप में स्वतन्त्र हैं। इससे समझ में आता है कि स्वयं के विकास और उत्कर्ष के लिए वे एक विशेष जिम्मेदारी की भूमिका निभाते हैं। यदि कोई व्यक्ति स्वयंसेवक बनना चाहता है, यदि कहें कि उसे जेसुइट सोसाइटी का स्वयंसेवक बनना है, तो उसे उसी संस्था के नियमों का पालन करना होगा। अथवा यदि उसे रेड क्रॉस सोसाइटी का स्वयंसेवक बनना है, तो उसका व्यवहार उसी संस्था के नियमों के अनुसार होगा। यहाँ उपस्थित स्वयंसेवकों की भी हमारे किसी न किसी आश्रम अथवा सम्पूर्ण भावधारा के प्रति निष्ठा एवं सहयोग का भाव है। एक प्रकार से देखा जाए, तो उपरोक्त तीनों श्रेणियों के लोग भी स्वयंसेवक ही हैं, परन्तु उनके सामाजिक बन्धन उन्हें सामाजिक नियमों के अधीन रखतें हैं। अर्थात् साधुगण संघ के नियमों के अधीन हैं, भक्तों को गुरु के निर्देशानुसार चलना है और भावप्रचार आश्रमों को दस-सूत्रीय निंदेशों का पालन करना है। क्या स्वयंसेवकों को भी किसी नियमों का पालन करना होगा?

अवश्य ही। यद्यपि उन पर बाहरी कोई नियम लागू नहीं हैं, तथापि उन्हें कुछ आवश्यक नियमों को पालन करना पड़ेगा। सर्वप्रथम उन्हें एक अच्छा जीवन व्यतीत करना होगा। द्वितीयत: उन्हें एक अच्छा नागरिक होना होगा।

तृतीयत: वे स्नेहमय और सेवापरायण होंगे।

इस भावधारा से जुड़े स्वयंसेवकों को कुछ नियमों का पालन करना होगा –

१. समाज में भले ही वे सुप्रतिष्ठित व्यक्ति हों, पर आश्रम में उनका कोई वैशिष्ट्य नहीं होगा। उनकी पहचान केवल स्वयंसेवक के रूप में ही है। यह बात परोक्ष रूप से उनके अहंकार के दमन में सहायक होती है। परन्तु यह पहचान उन्हें उनके आत्म-सम्मान से पृथक नहीं करती। सर्वत्र उनकी निपुणता के बारे में लोगों की उच्चतर भावना रहेगी।

२. वे समूह में कार्य करना सीखते हैं। स्वामीजी ने दु:ख व्यक्त करते हुए कहा था कि भारतीय लोग सामुहिक रूप से कार्य करना नहीं जानते। स्वयंसेवकों में नेतृत्व के गुण भी होने चाहिए और समूह में कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए।

३. आवश्यकता पड़ने पर उन्हें दूसरों को जिम्मेदारियाँ सौंपने के लिए तत्पर रहना चाहिए और देखना चाहिए कि वे उसे किस तरह निभाते हैं।

४. जब तक आपका चरित्र अच्छा नहीं है, आप दूसरों को अपने निर्देश-पालन हेतु बाध्य नहीं कर सकते।

५. आश्रम में स्वयंसेवकों को विभिन्न अवसरों पर विभिन्न कार्य सौंपे जाते हैं, इससे वे कार्य से संयुक्त और अनासक्त होने की कला सीखते हैं।

६. इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तत: स्वयंसेवक सम्पूर्ण कार्यों, चाहे वह दुर्गा-पूजा हो, ठाकुर-पूजा हो या अन्य कोई सम्मेलन हो, उसमें उसे साक्षीभाव से रहने की धारणा बनती है।

७. इस तरह वे सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य आरम्भ करते हैं, परन्तु संयुक्त और अनासक्ति का अभ्यास कर वे अन्तत: सच्चे धार्मिक बन जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि जो व्यक्ति समाज की सेवा करना चाहता है, क्या उसे किसी संस्था से जुड़े रहना आवश्यक है? क्या वह स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर सकता? यह भले ही सम्भव है, पर बहुत कठिन है। ऐसे व्यक्तियों को अपने आन्तरिक जीवन में उन्नति कर पाना कठिन है, क्योंकि वे अपने अहंकार के द्वारा संचालित होते हैं। वे अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति एवं विचार-तरंगों से परिचालित होते रहेंगे। कुछ स्वयंसेवक एक संस्था से दूसरी संस्था में अपनी निष्ठा बदलते रहते हैं अथवा समाज में नाम-यश प्राप्त करने के लिए वे एक साथ एक से अधिक संस्थाओं के सम्पर्क में रहते हैं। इस तरह किसी संयम एवं नियन्त्रण के अभाव में वे स्वनिर्मित आत्मश्लाघा की कारा में बद्ध हो जाते हैं। इस सूक्ष्म बाधा को टालना अत्यन्त कठिन है।

आज के स्वयंसेवक-मार्गदर्शन शिविर में विभिन्न राज्यों एवं समाजिक स्तरों से लगभग २४०० स्वयंसेवक आये हैं। कल्पना करके देखिए, यदि यहाँ उपस्थित सभी स्वयंसेवक एक हो जायँ, तो यह स्वयंसेवक-सैन्य कितना शक्तिशाली होगा ! कदाचित वे क्रिस्टोफर ईशरवुड ही थे, जिन्होंने 'सृजनात्मक लघु समुदाय' शब्द का प्रयोग किया था। इसका क्या अर्थ है? साम्यवाद और मार्क्सवाद अल्पसंख्यक वर्ग के बहुसंख्यक वर्ग पर शासन करने के विरोध में हैं। बैंक-डकैतों का एक निर्धारित वर्ग भी विशाल शासन कर सकता है। परन्तु जिस 'सृजनात्मक लघु समुदाय' का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं, वह उससे भिन्न है। यह लघु समुदाय एक सृजनात्मक शक्ति है, जिसमें समाज के उत्कर्ष के लिए एक सामर्थ्यशाली तत्त्व बनने की अन्त:शक्ति विद्यमान है।

क्षण-क्षण, दिनों-दिन हम उस बृहत् भावधारा, महान ठाकुर, माँ, और स्वामीजी के सार्वभौमिक व्यक्तित्वों की ओर डग भरते जा रहे हैं। आप भले ही साधु न हों, भावप्रचार आश्रम के सदस्य भी न हों, यहाँ तक कि दीक्षित भक्त भी न हों, तो भी आप अप्रत्यक्ष रूप से ठाकुर, माँ और स्वामीजी के समीप आते जा रहे हैं। श्रीमाँ सारदा ने एक बार कहा था, 'ठाकुर के भक्तों को देखो। उनमें से प्रत्येक सन्तुष्ट है। वे एक विशेष वर्ग के हैं।

स्वामीजी ने कहा था कि यदि कोई व्यक्ति सर्वांगीण विकसित होना चाहता है, तो उसे अपने जीवन में चारों योगों का पालन करना पड़ेगा। यदि आप हमारे आश्रमों की दिनचर्या का अवलोकन करें, तो आप देखेंगे कि आश्रम के समस्त कार्य चार योग - ज्ञान, कर्म, भक्ति अथवा ध्यान योग में से किसी एक के अन्तर्गत आते हैं। इस तरह ज्ञान, कर्म, भक्ति और ध्यान योग के समन्वय का पालन कर हम स्वयं को श्रीरामकृष्ण के ढाँचें में ढालने का प्रयास कर रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने एकबार बहुत ही विलक्षण बात कही थी, 'मेरे पास आओ, मैं तुममें से हरएक को बीस कर दूँगा।

आप लोगो में से जिनको २०१०-२०१४ तक आयोजित स्वामी विवेकानन्द १५०वें जयन्ती समारोह में भाग लेना का सुअवसर मिला है, उन्हें यह अनुभव हुआ होगा कि उनमें कार्य करने की अपरिमित क्षमताएँ हैं और वे महान कार्य कर सकते हैं।

ईश्वर-कृपा से हम भाग्यवान हैं कि हमारे अन्दर सकारात्मक एवं रचनात्मक विचार हैं। मनुष्य को क्रमश: ऊपर उठाने की इन विचारों में शक्ति है। आशा करते हैं कि ठाकुर-माँ-स्वामीजी के आशीर्वाद से हम इस संघ और राष्ट्र की सेवा के योग्य उपकरण बन सकेंगे। धन्यवाद। ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि ।
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी।।५३७।।

अन्वय – बालः क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा वस्तुनि क्रीडति तथा एव विद्वान् निर्ममः निरहं रमते, सुखी ।

अर्थ – जैसे बालक भूख-प्यास तथा शारीरिक पीड़ा को भूलकर अपने खिलौने को लेकर खेलता रहता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति 'अहंता'-'ममता' से रहित होकर सुखपूर्वक अपनी आत्मा में रमण करता रहता है ।

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्षमशनं पानं सरिद्वारिषु
स्वातन्त्र्येण निरंकुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने ।
वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही
संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ।।५३८।।

अन्वय – विदां अशनं चिन्ता-शून्यं अदैन्य-भैक्षं, पानं सरित्-वारिषु, स्थितिः स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा अभीः, निद्रा श्मशाने वने, वस्त्रं क्षालन-शोष-आदि-रहितं दिक् वा अस्तु, शय्या मही, संचारः निगमान्त-वीथिषु, परे ब्रह्मणि क्रीडा ।

अर्थ – ब्रह्मज्ञ पुरुष निश्चिन्त तथा दीनतारहित भाव से भिक्षा में प्राप्त अन्न का भोजन करता है, नदियों से जल पी लेता है, स्वाधीन भाव से सर्वत्र विचरण करता है, निर्भयता के साथ कभी जंगल में, तो कभी श्मशान में सो जाता है; वस्त्रों को धोना या सुखाना छोड़कर वल्कल धारण करता है, या दिगम्बर ही रहता है; पृथ्वी पर शयन करता है, वेदान्त के पथ पर विचरण करता है और परब्रह्म में क्रीड़ा करता है ।

विमानमालम्ब्य शरीरमेतत्
भुनक्त्यशेषान्विषयानुपस्थितान् ।
परेच्छया बालवदात्मवेत्ता
योऽव्यक्तलिङ्गोऽननुषक्तबाह्यः।।५३९।।

अन्वय – यः आत्मवेत्ता अव्यक्तलिङ्गः अननुषक्त-बाह्यः एतद् शरीरं विमानं आलम्ब्य, उपस्थितान् अशेषान् विषयान् परेच्छया बालवत् भुनक्ति ।

अर्थ – किसी भी बाह्य चिह्न से रहित आत्मवेत्ता, बाह्य विषयों से अनासक्त, देह में अभिमान न रखते हुए उसी का आश्रय लेकर, प्राप्त हुए विषयों का शिशु के समान दूसरों की इच्छानुसार भोग करता है । **(क्रमशः)**

आई है माँ सारदा

विनोद गुप्ता, अमृतसर

भक्तों को आधार देने आई है माँ सारदा ।
जग का उद्धार करने आई है माँ सारदा ।।१।।
देख सब हैरान हैं, माँ कैसी महान है,
युग-युग में आई जो शक्ति अभिराम है।
ममता अवतार ले अब आई माँ सारदा ।।२।।
जात-पात भूल गई, ऊँच-नीच भूल गई,
दीन-हीन लोग हेतु मातृ स्वरूप हुई ।
सब पर कर स्नेह अवतार आई सारदा ।।३।।
योग्यता पर ध्यान नहीं, पात्रता का भान नहीं,
निज जन है सारा जग, भेद का स्थान नहीं ।
करुणा का करने विस्तार आई सारदा ।।४।।
त्रेता में जो राम बने, द्वापर में कृष्ण बने,
कलि को पवित्र करने, वही रामकृष्ण बने ।
उनकी बन शक्ति साकार आई सारदा ।।५।।
भक्तों को आधार देने आई है माँ सारदा ।।

आवश्यक सूचना

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष जनवरी, २०१५ में भी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में विभिन्न प्रतियोगिताएँ होंगी और पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में आश्रम और विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ जनवरी को विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि दी जायेगी । आश्रम परिसर में, मन्दिर में पूजा, होम और व्याख्यान होंगे । २६ जनवरी, २०१५ से ३ फरवरी तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, राजेश रामायणी के रामचरित मानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे ।

सावधान ! आप मनुष्यों को दिखाने के लिए अपने धार्मिक कार्य मत कीजिए, नहीं तो अपने स्वर्गस्थ पिता से कोई फल नहीं पाएँगे ।

जब आप दान करें, तो जो आपका दाहिना हाथ करता है, उसे आपका बायाँ हाथ न जानने पाए, ताकि आपका दान गुप्त रहे; और तब आपके स्वर्गस्थ पिता, जो आपको एकान्त में देखते हैं, आपको उसका प्रत्यक्ष फल देंगे ।

– ईसामसीह की वाणी

श्रीमाँ सारदा की जन्मभूमि और उनका लीला-स्थान

श्रीमाँ की जन्मभूमि जयरामबाटी

कोआलपाड़ा

नहबतखाना (श्रीमाँ का निवास-स्थान), दक्षिणेश्वर
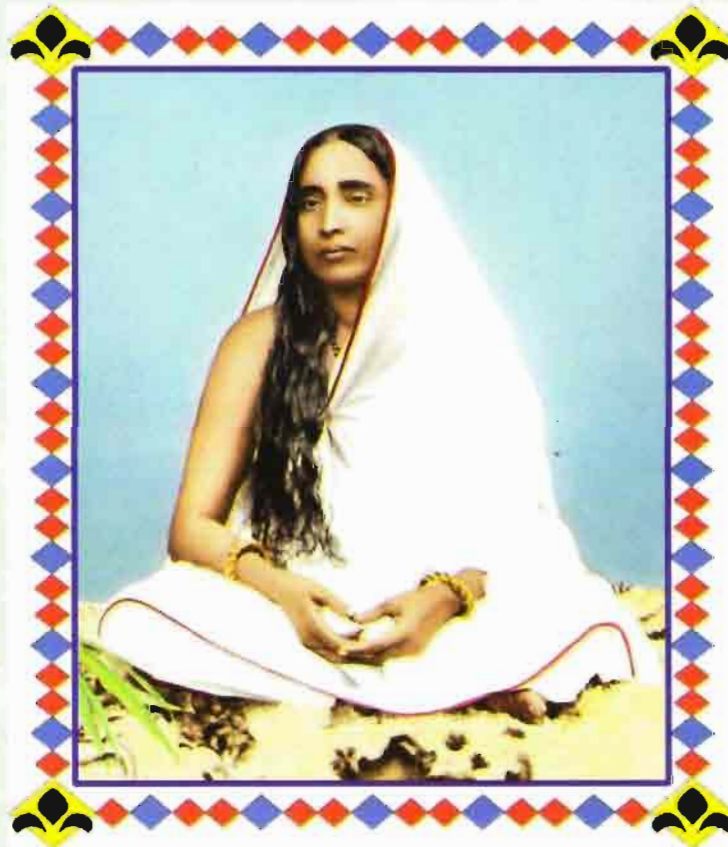
श्रीमाँ का समाधि मन्दिर, बेलूड़ मठ

उद्बोधन (श्रीमाँ का घर), कोलकाता

नीलाम्बर भवन (श्रीमाँ का पंचतपा स्थान), बेलूड़ मठ

विश्वव्यापी रामकृष्ण मिशन के उत्तराखण्ड और झारखण्ड स्थित आश्रमों के चित्र

मायावती

श्यामलाताल

राँची टी.बी. सेनेटोरियम

देवघर

राँची मोराबादी

जमशेदपुर

घाटशिला

जामतारा
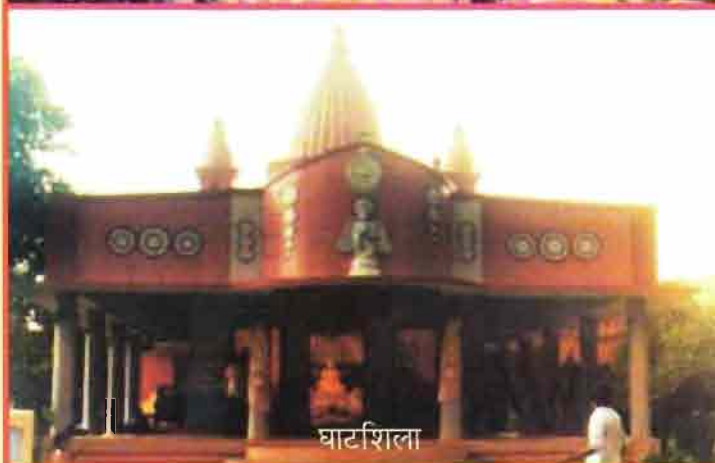
बिहार की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत

भगवान बुद्ध की ८० फीट ऊँची मूर्ति, बोधगया

नालंदा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष

आनन्द स्तूप, वैशाली

पटना गुरुद्वारा

महाबोधि मन्दिर, बोधगया

विष्णुपाद मन्दिर, गया

पटन देवी मन्दिर, पटना

विभिन्न स्थानों में आयोजित कार्यक्रमों की झाँकी

माँ सारदा कुटीर, वृन्दावन में पूजा

जम्मू-कश्मीर में राहत कार्य

वड़ोदरा आश्रम के कार्यक्रम में अरूणिमा सिन्हा

विवेकानन्द हवाई अड्डा, रायपुर में रथ की एक झाँकी

दुर्गा कॉलेज में मीडिया को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी

विवेकानन्द विद्यापीठ में भ्रातृत्व दिवस

कोरबा में भावधारा की सभा

अम्बिकापुर में विद्यार्थी-जागृति शिविर

पत्रिका पृष्ठ और चित्र - संयोजन ब्रह्मचारी बोधमयचैतन्य

स्वामी विवेकानन्द की हिमालय-यात्रा (११)

स्वामी विदेहात्मानन्द, पूर्व सम्पादक, 'विवेक ज्योति'

अब तक हमने देखा कि स्वामी अखण्डानन्द जी के साथ स्वामीजी ने छह दिन नैनीताल में निवास किया और उसके बाद पहाड़ों, जंगलों के मार्ग से अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। मार्ग में अलमोड़ा निवास के समय स्वामीजी को कई प्रकार की आध्यात्मिक तथा अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं। उसके बाद कई स्थानों का भ्रमण करते हुये वे हरिद्वार पहुँचे - सं)

हरिद्वार आगमन

स्वामीजी की जीवन-रक्षा हो जाने के बावजूद तत्काल उनके लिये अन्यत्र जाना असम्भव जानकर गुरुभाई लोग कुछ दिन और उनके साथ ऋषिकेश में ही रह गए। तत्पश्चात् जब स्वामीजी की देह में थोड़ी शक्ति आयी, तो वे लोग स्वामीजी को हरिद्वार ले गए। वहाँ आकर स्वामी सारदानन्द जिस झोपड़ी में रहकर पहले तपस्या करते थे, उसी में सब ठहरे। इसी बीच टिहरी के दीवान पूर्वपरिचित श्री रघुनाथ भट्टाचार्य टिहरी राज्य के राजा के साथ अजमेर के 'मेयो कॉलेज' जाने के मार्ग में हरिद्वार आए। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि एक विद्वान साधु वहाँ बीमार हैं। दर्शन करने आकर उन्होंने देखा कि ये तो उनके पूर्वपरिचित स्वामीजी ही हैं। उन्होंने झोपड़ी की मरम्मत के लिए कुछ रुपये दिए और दिल्ली के एक हकीम के नाम परिचय-पत्र देते हुए वहीं जाकर चिकित्सा कराने की सलाह दी। उन रुपयों से झोपड़ी की मरम्मत हुई।[४३]

स्वामी ब्रह्मानन्द उस समय कनखल में तपस्यारत थे। वे भी आकर उन्हीं लोगों के साथ रहने लगे। महेन्द्रनाथ दत्त लिखते हैं – "नरेन्द्रनाथ अस्वस्थ हुए। बीमारी ठीक होने पर उनके लिये खिचड़ी की व्यवस्था हुई थी। राखाल महाराज भी उस समय वहीं आ पहुँचे थे। उस समय वहाँ अनेक (गुरुभाई) लोग एकत्र हुए थे। राखाल महाराज बालक-स्वभाव थे। उन्होंने खिचड़ी में मिश्री का एक टुकड़ा डाल दिया था। खिचड़ी खाते समय नरेन्द्रनाथ को उसमें मिठास का बोध हुआ और उसमें से एक सूत भी निकल आया। इससे राखाल महाराज की पाकविद्या प्रकट हो गयी और उन्हें डाँट भी सुननी पड़ी। कुछ दिनों बाद नरेन्द्रनाथ के स्वस्थ हो जाने पर सभी लोग मेरठ चले गये।"[४४]

कृपानन्द-सान्याल की स्मृतिकथा

स्वामीजी की इस हिमालय यात्रा के उपसंहार के रूप में उनकी इस यात्रा के साथी कृपानन्द (वैकुण्ठनाथ सान्याल) ने सिंहावलोकन करते हुए लिखा है – "हिमालय भ्रमण के समय उनके साथ रहकर देखा, पहाड़ियों की निर्धनता देखकर वे आँसू बहाया करते थे और उन लोगों के दु:ख-कष्ट दूर करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। उसी समय उन्होंने कहा था – 'भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में जो धर्मशिक्षा दी है, उसमें पौरुष, भोग तथा मोक्ष सभी ने शुभकारी होकर कभी भारत को सर्वोच्च बनाया था, परन्तु बुद्धदेव ने जिस वैराग्य का प्रचार किया है, उससे देश दुर्बलता तथा दीनता से परिपूर्ण हो गया है।'

"उनकी (स्वामीजी) जैसी गुरुभक्ति प्राय: देखने में नहीं आती। हिमालय में तपस्या के दौरान गंगाधर की बीमारी से वे इतने विचलित हो गये थे कि उनका वैराग्य-भाव न जाने कहाँ उड़ गया, बोले – 'यदि अपना जीवन देकर अपने गुरुभाई के एक गुच्छे केश की भी रक्षा कर सकूँ, तो मैं उसे करोड़ों तपस्याओं जैसा समझूँगा। तुम लोग मेरी साधना में बाधक हो। तुम लोगों के साथ रहने से तुम लोगों की चिन्ता के सिवा और कुछ नहीं होगा।' इसीलिये उन्होंने हम लोगों की माया छोड़कर आकाश-वृत्ति का अवलम्बन करके पैदल ही सारे भारत का भ्रमण किया; ठण्ड, हवा, धूप, वर्षा किसी ओर ध्यान नहीं दिया। थक जाने पर किसी वृक्ष के नीचे या किसी मन्दिर में कहीं भी सो जाते। सम्बल के रूप में वह गीत था – 'मेरो दरद न जाने कोय। मीरा अपनी रामदिवानी।' मानो मूर्तिमान वैराग्य हों ! यदि कोई पूछकर भिक्षा देता, तभी लेते, अन्यथा निराहार ही रह जाते।"

"अपने पूर्व तपस्या-केन्द्र (बदरिकाश्रम) को देखकर यदि वे पुन: चिर-समाधिस्थ हो जायँ, तो फिर श्रीरामकृष्ण-जीवन-वेद की भाष्य-रचना नहीं हो पाती, लगता है इसी कारण महामाया ने उन्हें बदरिकाश्रम नहीं जाने दिया। परन्तु ऋषिकेश तीर्थ में निवास के समय उन्हें उनके चिर-अभीप्सित निर्विकल्प समाधि में मृतवत् देखकर हम लोगों के व्याकुल हो जाने पर अगले दिन चेतना लौटने पर उन्होंने कहा – प्रभु की कृपा से दूसरी बार निर्विकल्प का रसास्वादन मिला।"[४५]

हिमालय के कुछ महात्मा

हिमालय की इस यात्रा के दौरान उनकी अनेक सिद्ध सन्त-महात्माओं से भेंट हुई। कुछ का उल्लेख पहले आ

चुका है। कुछ के उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं। परवर्ती काल में स्वामीजी उन लोगों की याद करते हुए उच्च स्वर में प्रशंसा किया करते थे। एक बार उन्होंने भगिनी निवेदिता को बताया था, "ऋषिकेश में मुझे कई महापुरुषों के दर्शन हुए थे। उनमें से एक की बात याद है, वे पागल जैसे दिख रहे थे। नग्न-शरीर रास्ते पर चले जा रहे थे। लड़के उनके पीछे दौड़ते हुए उन पर पत्थर फेंक रहे थे। उनके चेहरे तथा गर्दन से खून की धारा बह रही है, तो भी वे ठठाकर हँसते हुए चले जा रहे थे। मैं उनके पास गया, उनके घाव धोये और खून बहना रोकने के लिये कपड़े का टुकड़ा जलाकर घावों पर लगा दिया। इस दौरान वे हँस-हँसकर बताते रहे कि पत्थर फेंकने के इस खेल में बच्चों तथा उन्हें भी कितना मजा आ रहा था। वे बोले, 'परम पिता ऐसे ही खेलते हैं!'

"लोगों की भीड़ से छुटकारा पाने के लिये कुछ सन्त छिपकर रहते हैं। वे संसारी लोगों का सम्पर्क पसन्द नहीं करते। एक सन्त ने अपनी गुफा के चारों ओर नर-कंकाल बिखेर रखे थे और ऐसा भ्रम फैला रखा था कि वे मुर्दों का भक्षण करते हैं। एक दूसरे सन्त किसी को देखते ही पत्थर फेंकने लगते। अन्य सन्त भी ऐसा ही कुछ करते थे।"

स्वामीजी ने बताया था, "इन लोगों को पूजा, तीर्थयात्रा या तपस्या करने की कोई जरूरत नहीं थी; तो भी वे लोग तीर्थों तथा मन्दिरों में इसलिये जाते रहते हैं, ताकि उससे अर्जित पुण्यों को लोक-कल्याण में लगा सकें।"[४६]

हिमालय में एक बार उन्होंने एक वृद्ध साधु को देखा, जो ठण्ड से काँप रहे थे। स्वामीजी के हृदय में श्रद्धा और सेवाभाव का उद्रेक हुआ और उन्होंने साधु का कष्ट दूर करने हेतु कन्धे से अपना कम्बल उतारकर साधु के शरीर में लपेट दिया। वृद्ध साधु सन्तुष्ट होकर मृदु हास्य के साथ उनकी ओर देखते हुए बोले, "नारायण आपका मंगल करें।"

एक चोर का रूपान्तरण

वहीं पर उनकी एक अन्य साधु से भी भेंट हुई थी, जिनकी सौम्य मूर्ति और पवित्र आचार-व्यवहार देखते ही वे समझ गए थे कि ये निश्चय ही उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न हैं। इसके बाद उनसे बातचीत होने पर यह जानकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही कि ये ही वे व्यक्ति हैं, जो कभी गाजीपुर के पवहारी बाबा के आश्रम में चोरी करने घुसे थे और पकड़े जाने पर बाबा की सौजन्यता से अभिभूत होकर वे चोरी करना छोड़कर संन्यासी हो गये। स्वामीजी ने पहले ही गाजीपुर में इस घटना के विषय में सुना था। अब उन साधु के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर स्वामीजी को इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण मिल गया कि किस प्रकार एक महापुरुष के सम्पर्क में आकर व्यक्ति का जीवन रूपान्तरित हो जाता है, एक चोर तक सन्त में परिणत हो जाता है। पवहारी बाबा का स्मरण करके और सत्संग की महिमा के विषय में सोचकर स्वामीजी का चित्त भावविभोर हो उठा। साधु ने बताया, "जब बाबाजी ने मुझमें नारायण देखते हुए मुझे अपना सब कुछ सौंप दिया, तब मैं अपनी भूल तथा हीनता समझ गया और तभी से सांसारिक ऐश्वर्य को छोड़कर पारमार्थिक ऐश्वर्य की खोज में घूमने लगा।" स्वामीजी की काफी रात तक इस साधु के साथ बातचीत हुई और वे निश्चयपूर्वक समझ गए कि इस व्यक्ति को सत्य की प्राप्ति हो गयी है। इसके बाद भी कई दिनों तक यह अद्भुत घटना बारम्बार उनके मानस पटल पर सजीव हो उठती थी। वस्तुत: आजीवन उन्होंने इसे याद रखा था। वे जब कहते, 'पापियों में भी साधुता का बीज छिपा हुआ है', तो वे केवल वाग्मिता का सहारा लेकर ही नहीं, अपितु निश्चित रूप से इस प्रत्यक्ष घटना का स्मरण कर ही वैसा कहा करते थे।[४७]

तुरीयानन्द जी ने एक पत्र में लिखा है, "ठाकुर के श्रीमुख से मैंने ऋषिकेशी साधुओं की विशेष प्रशंसा सुनी है। वे कहा करते थे कि साधु-समाज में कोई अव्यवस्था होने पर ऋषिकेश के साधु जो कहते हैं, वही स्वीकार किया जाता है। स्वामीजी उनका गुणगान करते हुए उन्मत्त हो जाया करते थे। कनखल में रहते समय महाराज (ब्रह्मानन्दजी) को ऋषिकेश के साधुओं को अत्यन्त यत्नपूर्वक आहार आदि कराते तथा स्तुति करते हुए मैंने स्वयं देखा है।"[४८]

(क्रमशः)

सन्दर्भ –

४३. युगनायक विवेकानन्द, सं. १९९८, खण्ड १, पृ. २४८-४९; स्मृतिकथा (बँगला), स्वामी अखण्डानन्द, पृ. ५९, **४४.** स्वामी सारदानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली, सं. १३५५, पृ. ६५-६६; विश्वपथिक विवेकानन्द, उद्बोधन कार्यालय, पृ. १८६, **४५.** श्रीश्री रामकृष्ण लीलामृत (बँगला), द्वितीय सं. पृ. २९३-९५, **४६.** Complete Works of Swami Vivekananda, Vol 9, Pp. 417, Complete Works of Sister Nivedita, Vol 1, Pp. 133, **४७.** युगनायक विवेकानन्द, खण्ड १, पृ. २५०-५१, **४८.** साधकों के नाम पत्र, नागपुर, प्रथम सं., पृ. १०३।

स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

(डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के सचिव और छत्तीसगढ़ निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष हैं। वे ओजस्वी वक्ता, लेखक, कर्मयोगी और कुशल प्रशासक हैं। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आयोजित स्वामी विवेकानन्द जयन्ती समारोह के अवसर पर १३-१-२०१४ को मुख्य अतिथि के रूप में उन्होंने जो सारगर्भित व्याख्यान दिया था, उसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। इसका सी.डी. से अनुलिखन रायपुर की सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है। – स.) (गतांक से आगे)

ज्ञान की अधुनातन उपलब्धियों के बावजूद आज सम्पूर्ण विश्व संघर्ष की अग्नि में जल रहा है। आज हम प्रतिक्षण अत्यन्त संकीर्ण होते जा रहे हैं। धर्म के नाम पर आज भी भीषण रक्तपात हो रहा है। काले और गोरों का भेद आज भी हमारे मन को व्यथित कर रहा है। तलवार और धन के बल पर धर्म-परिवर्तन की गाथायें आज भी पुरानी नहीं हुई हैं। आज ही नहीं, हम शताब्दियों से इस तरह की समस्या से पीड़ित रहे हैं और शताब्दियों से इसके निदान का प्रयास किया जाता रहा है। किसी समय कुछ विचारकों ने सोचा कि यदि धर्म ही हमारे धार्मिक संकीर्णता का कारण है, तो क्यों न सारी दुनिया में एक ही धर्म का प्रचार कर दिया जाय। ऐसा सोचकर उन्होंने सारी दुनिया में एक ही धर्म को प्रचार करने का संकल्प लिया और वैसा प्रयास किया। किन्तु धर्म का सम्बन्ध तो व्यक्ति की मानसिकता से होता है। सभी व्यक्ति एक ही धर्म के अनुसार अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। धर्म का बहुत गहरा सम्बन्ध मनुष्य की आन्तरिक संरचना से होता है। इसके फलस्वरूप समस्या का समाधान नहीं हुआ और तब तलवार और धन के बल पर धर्म-परिवर्तन का भीषण कुचक्र प्रारम्भ किया गया। जब सारे विश्व का इतिहास, धर्म का इतिहास रक्त-रंजित हो गया, तब ऐसे तनाव, संक्रमण के युग में श्रीरामकृष्णदेव और स्वामी विवेकानन्द आते हैं। श्रीरामकृष्णदेव अपनी अनुभूति से मानो इस धार्मिक संकीर्णता की समस्या का समाधान करते हैं। वे छ: अंधे और एक हाथी का उदाहरण बतलाते हैं। छ: अंधे हाथी के स्वरूप को जानने के लिये हाथी के पास जाते हैं। वे छ: अंधे हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों को स्पर्श करते हैं। जो अंधा हाथी के जिस अंग को स्पर्श करता है, उसे ही हाथी का वास्तविक स्वरूप मान लेता है। जो अंधा हाथी के मस्तक को छूता है, उसे लगता है कि हाथी ढाल की भाँति होता है। जो कान को छूता है, उसे लगता है कि हाथी सूप की भाँति होता है। जो अंधा हाथी के सूँड़ को स्पर्श करता है, उसे लगता है कि हाथी अजगर की भाँति होता है। जो अंधा हाथी के पेट को स्पर्श करता है, उसको लगता है कि हाथी दीवाल की भाँति होता है। जो अंधा हाथी के पैर को छूता है, उसको लगता है कि हाथी स्तम्भ की भाँति होता है। ये सभी अंधे हाथी के रूप को लेकर परस्पर संघर्ष करने लगते हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि धर्मों के सम्बन्ध में ठीक इसी प्रकार की बात होती है। धर्मों के झगड़े वस्तुत: दृष्टि की अपूर्णता के कारण होते हैं। सत्य तो अनन्त भावमय है। सत्य के अनेक रूप हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसका सत्य अलग है। प्रत्येक व्यक्ति सत्य को जानना चाहता है। वह अपनी बुद्धि के आधार पर सत्य को परखना चाहता है। अपनी बुद्धि के आधार पर वह सत्य के जिस रूप का दर्शन करता है, उसे ही वह एकमात्र सत्य मान लेता है। मानव-बुद्धि की यही विडम्बना है कि एक ओर तो वह सत्य को अनन्त और असीम कहता है और दूसरी ओर वह उसी सत्य को अपनी बुद्धि के संकीर्ण दायरों में सीमित कर लेना चाहता है। इसी को धर्मान्धता, इसी को मतान्धता कहते हैं। इसी से सारे संघर्ष और कलह उत्पन्न होते हैं। किन्तु जो सत्य को सभी रूपों में देखता है, जो आँखवाले व्यक्ति की भाँति हाथी के सम्पूर्ण अंगों को देखता है, वही यथार्थ देखता है। जब तक सत्य की अनुभूति नहीं होती, तभी तक द्वेष रहता है, तभी तक कलह रहता है, किन्तु एक बार जब सत्य की अनुभूति व्यक्ति को होती है, फिर चाहे वह किसी देश-काल का व्यक्ति हो, वह केवल एक ही बात करता है। उसकी वाणी बतला देती है कि इस व्यक्ति ने सत्य के दर्शन कर लिये हैं। ऐसा सत्यद्रष्टा व्यक्ति हमारे ऋग्वेद के मनीषियों के साथ सत्य के स्वर-में-स्वर मिलाकर गाने लगता है –

इंद्रम् मित्रम् वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सुपर्णवान ।
एकम् सद्विप्राः बहुधा वदन्तिअग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

अर्थात् जिसे लोग इन्द्र यम, वरुण, अग्नि, मातरिश्वा आदि कहते हैं, वे सब सत्तायें एक हैं। विद्वान् उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। किन्तु सत्य तो एक है। श्रीरामकृष्णदेव ने इस सत्य की अनुभूति की। स्वामी विवेकानन्द ने इस सत्य की अनुभूति की। स्वामीजी ने श्रीरामकृष्णदेव की इस सत्य की अनुभूति को सारी दुनिया में फैलाया। धर्म-महासभा के अन्तिम दिन स्वामीजी ने इसी तत्त्व पर बल दिया। स्वामीजी ने बताया कि सभी धर्म सत्य हैं। स्वामीजी ने कहा, ''शुचिता, पवित्रता और दयालुता, किसी धर्म-विशेष की धरोहर नहीं है। प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठतम स्त्रियों और पुरुषों को जन्म दिया है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण के बावजूद यदि कोई व्यक्ति केवल अपने धर्म की सत्यता का बखान करे और दूसरे के धर्म को

असत्य कहे, तो मैं उसकी बुद्धि पर तरस खाता हूँ और शीघ्र ही उसे बता देना चाहता हूँ कि उसके सारे विरोध के बावजूद धर्मों की ध्वजा पर लिखा रहेगा – 'शान्ति' न कि 'कलह', प्रेम करो, संघर्ष मत करो।'' इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने सर्वधर्म-समभाव का संदेश दिया।

आज के युग में स्वामी विवेकानन्द के इन संदेशों की बड़ी सार्थकता है। विश्व-संस्कृति के विचारक मानते हैं कि आज हमें वैश्विक संस्कृति की आवश्यकता है। आज का सारा समाज, पारस्परिक द्वेष और कलह से परिव्याप्त है। आज हम एक ऐसे ज्वालामुखी पर खड़े हैं, जो किसी भी तरह, किसी भी समय फूटकर सारी मानव-सभ्यता को नष्ट कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर में एक अच्छी बात लिखी गयी है –

"War first takes place in the mind of man, than it apears in the external world. Therefore the mind of man should be changed first.

– 'युद्ध सबसे पहले मनुष्य के मन में जन्म लेता है, फिर वह बाह्य जगत में प्रकट होता है। इसलिये सबसे पहले मानव-मन का परिवर्तन आवश्यक है।'

यदि हमें संसार को युद्धों की विभीषिका से मुक्त करना है, तो हमें मनुष्य के मन को बदलना होगा। यह मनुष्य का मन कैसे बदलेगा? मनुष्य का मन तभी बदलेगा, जब हम स्वामी विवेकानन्द की अनुभूति को, उनके संदेशों को अपने जीवन में उतारेंगे। सर्वधर्म-समन्वय के सम्बन्ध में जो अनुभूति श्रीरामकृष्णदेव ने की थी, जिस अनुभूति का प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने सारी दुनिया में किया, उस अनुभूति को यदि हम अपने जीवन में उतारें, तो इस धार्मिक संकीर्णता की समस्याओं से हम अपने आप को मुक्त कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने मनुष्य के महत्व को प्रतिपादित किया, मनुष्य की दिव्यता को प्रतिपादित किया। एक बार श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्रनाथ से पूछा था – ''बेटा नरेन्द्र ! तू क्या चाहता है?'' तब नरेन्द्रनाथ ने कहा था – ''गुरुदेव, मैं चाहता हूँ कि दिन-रात शुकदेव की भाँति समाधि में डूबा रहूँ, मुझे अपने शरीर की भी सुधि न हो । शरीर धारण करने के लिये तीन-चार दिन बाद उठूँ। कुछ भोजन ग्रहण करूँ और फिर निर्विकल्प समाधि में डूब जाऊँ।'' भगवान श्रीरामकृष्णदेव के पास, उनके प्रिय शिष्य नरेन्द्र नाथ ने कितनी श्रेष्ठ कामना की थी ! श्रीरामकृष्णदेव को तो खुश होना था कि एक ऐसा शिष्य मिला, जो धन-सम्पदा की कामना नहीं कर रहा है, जो राज्य-वैभव नहीं चाह रहा है, स्त्री-पुत्र नहीं चाह रहा है। यह शिष्य तो उसी निर्विकल्प समाधि की कामना कर रहा है, जो ऋषि-मुनियों का परम प्राप्तव्य है ! जिसके लिये ऋषि-मुनि कितनी तपस्या करते हैं, यह उसी की माँग तो कर रहा है। पर श्रीरामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द की उस वाणी से प्रसन्न नहीं हुये। उन्होंने उनका तिरस्कार करते हुये कहा, ''अरे बेटा, मैं तो समझता था, तू विशाल वट-वृक्ष की भाँति होगा, जिसकी छाया में बहुत से लोग शान्ति का अनुभव करेंगे। किन्तु मैं देख रहा हूँ कि तू बड़ा स्वार्थी हो गया है। अरे बेटा, इससे भी एक ऊँची अवस्था है – 'शिव भाव से जीव सेवा'। बाद में श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्रनाथ को उस ऊँची अवस्था 'शिव भाव से जीव सेवा' की अनुभूति भी करा दी थी। जब श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्रनाथ को इस तत्त्व की अनुभूति करायी, तब नरेन्द्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा था कि ठाकुर से आज अभिनव दृष्टि मिली है और यदि मुझे मौका मिला तो ठाकुर के इस संदेश का प्रचार-प्रसार मैं सारी दुनिया में करूँगा। बाद में उनको मौका मिलता भी है।

श्रीरामकृष्णदेव के देहावसान के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेरित आन्तरिक बेचैनी, गुरु के संदेशों के प्रचार की उत्कट अभिलाषा, भारत को जानने की तीव्र इच्छा, इन सब बातों ने उन्हें परिव्राजक बना दिया। वे भारतीय संस्कृति के सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों में गये और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक देश का कोना-कोना उन्होंने छान डाला। वर्षों तक किसी को पता नहीं रहा कि श्रीरामकृष्ण देव के इस प्रिय शिष्य नरेन्द्रनाथ का क्या हुआ ! उन्होंने अपने आप को भारत की विराटता में विलीन हो जाने दिया। स्वामीजी ने अपनी यात्रा के दौरान भारत की गरीबी, सामाजिक पिछड़ेपन और आर्थिक नग्नता को देखा। इसके साथ ही साथ उन्होंने भारत की सांस्कृतिक गरिमा और आध्यात्मिक ऊर्जा का भी अनुभव किया। वे बिना किसी योजना के जहाँ उनकी इच्छा हुई वहाँ गये, पर जहाँ भी गये, उनकी सतर्क बुद्धि और संवेदनशील मस्तिष्क ने सैकड़ों बातें आत्मसात की। उत्तर भारत के अलमोड़ा में हिमालय का उन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। हिमालय की देवदारू की छायामंडित कंदराओं में रहकर कुछ दिन उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। पश्चिम में जैन और इस्लामिक परम्पराओं ने उनको आकर्षित किया। अलवर-निवास के अवसर पर वे इतिहास के अध्येता बने। भारतीय इतिहासकारों को वैज्ञानिक पद्धति अपनाने की बात पहली बार स्वामी विवेकानन्द ने कही। भारत में इतिहास-लेखन एक दूसरी तरह से होता रहा है। चारणों और भाटों द्वारा भारत का इतिहास लिखा जाता रहा है। स्वामीजी पहले आधुनिक विचारक थे, जिन्होंने भारतीय इतिहासकारों को वैज्ञानिक पद्धति से इतिहास लिखने की बात कही ।

ऐतिहासिक इमारतों को देखकर वे बहुत अधिक प्रभावित होते थे। नालंदा और सारनाथ में भगवान बुद्ध के भग्न स्तूपों के बीच वे घंटों बुद्ध के जीवन पर विचार करते रहे। ताजमहल की भव्यता के सम्मुख उनकी आँखें सजल हो आयीं। दक्षिण के गौरवपूर्ण प्रासादों, भवनों ने उनके देशाभिमान को जाग्रत किया। इस प्रकार वह भ्रमणशील संन्यासी एक स्थान से दूसरे स्थान तक, समतल प्रदेशों से पर्वतों की ऊँचाईयों तक भ्रमण करता रहा। उनकी यह यात्रा दिव्य और भव्य थी। यहाँ उसने भारत की सभ्यता के दर्शन किये। यहाँ उसने देखा कि राजस्थान के ग्रामीण, केरल के ग्रामीणों को गले लगाते हैं। इस प्रकार वह भ्रमणशील संन्यासी परिव्रजन करता रहा। प्राचीन वास्तुकला और शिल्पकला के मौन जगत और सभ्यता के भग्नावशेषों के बीच से गुजरता हुआ उसने अनुभव किया कि उसने इतिहास के संदेशों को पढ़ लिया है। उसे लगा कि उसने अशोक, संघमित्रा और समुद्रगुप्त की प्रेरणाओं को जान लिया है। उसे लगा कि उसने गौतम के महान चरणों का स्पर्श कर लिया है। इस प्रकार प्राचीन आत्माओं के चमत्कारिक स्पर्श से अपने आप को परिवर्तित होता हुआ उन्होंने अनुभव किया। **(क्रमशः)**

'जय सतनाम' मंत्र के उद्‌गाता गुरु घासीदास

अनिल कुमार तिवारी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

"समाज में व्याप्त अंधविश्वास का त्याग करो एवं एकाग्र होकर सतनाम का जप करो, किसी संत से जो कुछ ग्रहण कर सकते हो ग्रहण करो, परन्तु किसी धर्म, सिद्धान्त का विरोध मत करो। जिस किसी ने तुम्हारा उपकार किया है, उनका भला अवश्य करो। हमेशा अपनी मेहनत की कमाई ही खाओ। हमारे विचार एवं सिद्धान्त सभी मानव-मात्र के लिए खुले हुए हैं, किसी के लिए भी इसमें प्रतिबन्ध नहीं है। संसार में सभी मानव एक समान हैं। शारीरिक रचना के आधार पर उनमें कभी भी भेद या असमानता मत करो। गुरु बनाने से पहले उसके ज्ञान को परख अवश्य लेना।"

उपर्युक्त 'सतनाम ज्ञान' के उद्‌गाता बाबा गुरु घासीदास का छत्तीसगढ़ की पवित्र धरा पर अवतरण माघ पूर्णिमा, तदनुसार १८ दिसम्बर, १७५६ को सोना खान जमींदारी के गाँव गिरोदपुरी में एक सम्पन्न कृषक परिवार में हुआ। माँ अमरौतिन बाई एवं पिता महंगूदास ने बड़े प्रेम से बालक का नाम घसिया रखा। बालक घसिया अपने माता-पिता की एकमात्र और प्राणप्रिय संतान थे। बाल्यकाल से ही साधु वृत्ति होने के कारण घर-गृहस्थी में बालक घसिया का मन नहीं लगता था। कृषक कार्य में वे ध्यान तो देते परन्तु सारा ध्यान आध्यात्मिक सत्संग एवं साधु-संन्यासियों की ओर ही लगा रहता। एक मात्र लाडले पुत्र के इस प्रकार के लक्षण देख माता-पिता संशय में रहते कि ईश्वरप्रदत्त यह एकमात्र सहारा कहीं साधु ही न हो जाए। बालक घसिया जप-तप एवं ध्यान के लिए अकेले ही सोना खान की पहाड़ियों में निकल जाया करते और घण्टों ध्यान में लीन रहा करते थे। तत्कालीन संत जगजीवनराम जी के प्रवचन का उन पर गहरा असर हुआ।

माता-पिता ने गाँव सिरपुर के अंजोरी मण्डल की पुत्री सफूरा देवी से उनका विवाह सम्पन्न करा दिया। माता-पिता की सेवा करते हुए उनके तीन पुत्र अमरदास, बालकदास, आगरदास एवं पुत्री सुभद्रा का जन्म हुआ।

जनश्रुति है कि कृषक के रूप में जब घासीदास जी कार्य करते रहते, तो कई बार नागर (हल से जुते बैल) छोड़ ध्यान में बैठ जाते और नागर अपने आप चलकर पूरा खेत जोत दिया करते थे।

अंग्रेजों का शासन और जमींदारी का समय था। खेती में सिंचाई के साधन का अभाव था, इसके कारण हमेशा अकाल पड़ता और दुर्भिक्ष के उन दिनों में गरीब किसान, मजदूर भूख से तड़पकर काल-कवलित हो जाते, जो बचते उन पर लगान, राजस्व चुकाने का बोझ रहता और शासन की कठोर प्रताड़ना का उनलोगों को शिकार होना पड़ता था।

गुलामी के उन दिनों में गाँवों में जहाँ अशिक्षा, अंधविश्वास, जादू-टोना, पशुबलि, मूर्तिपूजा, छुआछूत जैसी बुराईयाँ पग-पग पर फैली हुई थीं, कर्मकाण्ड में बँधा व्यक्ति व्याकुल था और किसी तरह उनसे छुटकारा पाने का उपाय भी खोजा करता था। इन सारी परिस्थितियों का प्रभाव घसिया पर ऐसा पड़ा कि दलित, शोषित समाज को छुटकारा दिलाने का संकल्प उन्होंने मन-ही-मन लिया और वे गृह त्यागकर, छाता पकड़कर जंगलों में तपस्यारत हो गये। छः मास की घोर तपस्या के बाद सन् १८२० में उन्हें सतनाम ज्ञान की प्राप्ति हुई।

ईश्वर प्रदत्त इस ज्ञान से वे 'गुरु घासीदास' हो गए। सतनाम का अर्थ सम्पूर्ण शरीर को संचालित करनेवाली अद्‌भुत, अलौकिक, अविनाशी, अखण्ड, शक्ति से है। इसी सत्य को गुरु घासीदास जी ने ईश्वर माना है। ईश्वर ही

सत्य है। सन् १८२० में प्रथम दर्शन एवं उपदेश गुरु घासीदास जी ने गिरौदपुरी में दिया, हजारों की संख्या में गुरुजी के दर्शन को लोग एकत्रित हुए और वहीं गुरु घासीदास जी ने जय सतनाम के मूल-मन्त्र का जयघोष किया। उन्होंने उपदेश दिया – ''ईश्वर सत्य है; अहिंसा, सच्चरित्र; नरबलि, मूर्ति पूजा के प्रति निषेध; सभी प्राणी समान हैं, जीव-हत्या पाप है, नारी को माता मानो, बैल एवं भैस को दोपहर में नागर में मत जोतो, उन्हें भी कष्ट होता है।''

आज से लगभग ढाई सौ वर्षों पूर्व गुरु घासीदास जी ने तीन प्रमुख उपदेश दिये – बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो एवं बुरा मत कहो। अपने अनुयाइयों को सदैव सत्य बोलना, सत्य पर विश्वास करना, क्रोध न करना, प्राणीमात्र से प्रेम करना, हमेशा अहिंसा का सहारा लेना, ईश्वररूपी ज्योति की पूजा करना जैसे सन्देश दिए।

किसी सन्त का आभूषण त्याग, तपस्या और चरित्र ही है। सच्चे गुरु संयोगवश ही मिलते हैं, यही पारस शिष्यरूपी लौह को अपने स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित कर देते हैं। संतों के मन में जहाँ मोह-माया का त्याग, परहित की भावना, जन कल्याण की भावना, समता की भावना की ज्योति निरन्तर प्रज्ज्वलित होती रहती है। जीवन को यदि जीना है, तो सदैव संसार में प्यार बाँटते रहो, पीड़ित मानवता की सेवा करो, अपने अंदर जो अहंकार कूट-कूट कर भरा हुआ है, उसका नाश करो, प्रभु भक्ति की धारा अपने अंदर बहाओ, तन – मन को निर्मल करो और ज्ञान गंगा में डूब जाओ, अपने शत्रुओं से भी मित्रवत व्यवहार करो। बाबाजी के ये उपदेश आज सतनाम पंथ में लोग बड़े भक्तिभाव से सुनते हैं।

गुरु घासीदास जी की हिन्दू समाज को सबसे बड़ी देन थी — राज्याश्रय मिलने के कारण ईसाई धर्म का प्रचार जोरों से था। दलित तथा आदिवासी गाँव-के-गाँव ईसाई बनाए जा रहे थे। ऐसे में ईसाई धर्म की इस आँधी के प्रवाह को घासीदास जी ने सामने आकर रोका तथा स्वाभिमान के साथ सतनाम के साथ जीना लोगों को सिखाया। नवजीवन के प्रति लोगों को आकर्षित किया और भक्ति पंथ की ऐसी धारा बहायी कि आज लाखों की संख्या में उनके अनुयाई सतनाम की गंगा में डुबकी लगा अपना जीवन धन्य कर रहे हैं। ❍

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

२७५. दीनन दुख-हरन देव लेत अवतार

सिंध का राजा मरकम शाह इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था। अपने धर्म का प्रचार-प्रसार कराने के इरादे से उसने मुनादी पिटवाई कि राज्य में जिसे भी रहना हो, उसे इस्लाम धर्म कबूल करना होगा। सिंधी समुदाय ने जब यह मुनादी सुनी तो उनमें हड़कंप मच गया। सिंधु नदी के तट पर वे इकट्ठे हुए और तीन दिन तक भूखे-प्यासे खड़े रहे। चाथे दिन अकस्मात् तूफान आया। वे लोग घबरा गये। तूफान के थमने पर उन्होंने लहरों पर नजर डाली, तो उन्हें एक प्रकाश पुंज दिखाई दिया। वह एक ऋषितुल्य दैवी पुरुष था, जो एक मछली पर आसनस्थ था और झूले के समान झूल रहा था। इतने में आकाशवाणी हुई – ''तुम लोग तनिक भी भयभीत न होओ। वरुण देव ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया है। उदयचन्द्र के रूप में वे तुम्हारी रक्षा करेंगे।'' लोगों में हर्ष की लहर फैल गई और उन्होंने इस दैवी पुरुष को झूलेलाल नाम देकर नमन किया।

मरकम शाह के पास उदयचन्द्र गए और उन्होंने कहा, ''प्रजा को सुख देना राजा का कर्त्तव्य है। यदि तुम्हें शान्ति से राज्य करना है, तो प्रजा पर जोर-जुल्म मत करो। इस संसार में पैदा हुए हर व्यक्ति को अपना धर्म पालने का हक है। उनका धर्म-परिवर्तन करने की जुर्रत बिल्कुल मत करो। जोर-जबरदस्ती करना खुदा के आदेश का उल्लंघन होगा।'' आकाशवाणी की खबर राजा तक पहुँच चुकी थी। उदयचन्द्र के मुखमण्डल से निकलते तेज से राजा चकाचौंध हो गया। उनके पैरों पर गिरकर उसने क्षमा माँगी और कहा,'' आज से आप मेरे गुरु हुए, आप जो भी आदेश देंगे, बन्दा उनका ठीक पालन करेगा।' राजा ने तुरन्त दूसरी मुनादी पिटवाई कि राज्य का हर व्यक्ति अपने-अपने धर्म का पालन करने के लिये स्वतन्त्र है। दूसरे धर्म का जो भी असम्मान या भेदभाव करेगा, उसे कड़ा दण्ड दिया जाएगा। इससे राज्य में खुशहाली छा गई और लोग भाईचारे के साथ रहने लगे।

इस पृथ्वी पर जब भी अत्याचार बढ़ने लगते हैं, भगवान शान्ति-स्थापना के लिये अवतार लेते हैं। अवतार शब्द का अर्थ है – उतरकर आना। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने आश्वस्त किया है – ''जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म में वृद्धि होगी, साधुता का रक्षण करने और दुष्टता का शमन करने के लिये मैं इस पृथ्वी पर देह धारण करूँगा।'' इस तरह धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश, सज्जनता की रक्षा और दुष्टों का दलन भगवान के अवतार लेने का मुख्य प्रयोजन है। ❍❍❍

(प्यारे बच्चों, इस बार हम तुम्हें कैसे एकाग्रता और आत्मविश्वास बढ़ा कर सद्गुणों का विकास कर अपने जीवन को महान बनायें, ऐसी दो घटनाओं से अवगत कराता हूँ। आशा है, तुम अपने जीवन में अपना कर महान बनोगे - सं.)

एकाग्रता और आत्मविश्वास

रोहन सातवीं कक्षा में पढ़ता है। वह पढ़ने-लिखने, खेल-कूद सभी में अच्छा है। घर में माँ-पिताजी का भी कहना मानता है। यदि उसमें कुछ कमी थी, तो केवल आत्मविश्वास की। जब भी परीक्षाएँ पास आती थीं, वह घबड़ा जाता था। वह पढ़ाई तो नियमित रूप से करता था, पर उसे डर लगता था कि मैं कहीं अनुत्तीर्ण न हो जाऊँ। एक बार उसने यह बात अपने स्कूल के संस्कृत अध्यापक शास्त्रीजी से कही। अध्यापक ने कहा, 'अरे रोहन, तुम तो बहुत अच्छे लड़के हो। तुम्हें इन छोटी-मोटी परीक्षाओं से तो बिल्कुल नहीं डरना चाहिए।' रोहन ने कहा, 'मास्टर जी, मैं जब पढ़ने बैठता हूँ, तो मेरा मन यहाँ-वहाँ जाता है, कभी-कभी तो कोई विषय समझ में ही नहीं आता और डर लगता है कि कहीं मैं परीक्षा में फेल न हो जाऊँ। अध्यापक जी ने कहा, 'अरे, यह तो सबके साथ होता है। इसका मतलब यह नहीं कि हम हिम्मत हार जाएँ। जब भी पढ़ाई करोगे, पूरी एकाग्रता और आत्मविश्वास के साथ करना। मैं तुम्हें स्वामी विवेकानन्द के जीवन की एक घटना सुनाता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द जब जयपुर में थे, तब उनकी वहाँ के एक संस्कृत पण्डित से व्याकरण सीखने की इच्छा हुई। पण्डित जी उन्हें सिखाने लगे। पण्डित जी की सिखाने की शैली कठिन थी। तीन दिन सिखाने के बाद भी स्वामीजी जब कुछ सीख न सके तो पण्डितजी ने कह दिया कि वे अब उन्हें नहीं सिखा सकेंगे। स्वामीजी बहुत लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि जब तक वे इस विषय को नहीं सीख लेते, अन्य किसी विषय पर ध्यान नहीं देंगे। दृढ़ संकल्प लेकर वे पढ़ने बैठ गये और जो पण्डितजी तीन दिन में न सिखा सके, उन्होंने तीन घण्टे में सीख लिया। बाद में वे पण्डितजी के पास गये और जो कुछ सीखा था, उन्हें कह सुनाया। पण्डितजी तो सुनकर हैरान हो गये। इस घटना को लेकर स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''मन में यदि प्रचण्ड इच्छा-शक्ति हो, तो सब कुछ सम्भव हो जाता है, यहाँ तक कि पर्वत को भी चूर चूर कर धूल के कणों में बदला जा सकता है।''

रोहन यह सब कुछ ध्यान से सुन रहा था। उसने अध्यापक से कहा कि अब वह आत्मविश्वास और एकाग्रता के साथ पढ़ाई करेगा और परीक्षा में अच्छे नम्बर लाएगा।

व्यक्ति अपने गुणों से महान होता है

कोसलपुर नाम के एक गाँव में एक गरीब किसान रहता था। उसका नाम रामसखा था। उसके बेटे का नाम श्यामू था। वह आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था। घर का खर्चा बड़ी मुश्किल से किसी तरह निकलता था। रामसखा को अपने बेटे की एक बात को लेकर बड़ी चिन्ता थी। वह यह कि श्यामू को हमेशा नये कपड़े, नये जूते, नयी टोपी आदि की आवश्यकता रहती थी। श्यामू को लगता था कि खुद को सजाने-सँवारने से ही व्यक्ति बड़ा बन जाता है। वह नयी वस्तुएँ खरीदने में ही पैसे खर्च कर देता था।

एक बार श्यामू के नाना उसके घर आए। श्यामू ने पूछा, 'नानाजी , आप मेरे लिए क्या लाए हैं?' नानाजी ने कहा, 'मैं तेरे लिए एक गाय लाया हूँ।' 'गाय का मैं क्या करूँगा?' नानाजी ने गाय को दिखाते हुए कहा, 'देखो, इस गाय को अच्छी तरह सजाया गया है। तुम इस गाय को बाजार में ले जाकर बेचना और इससे जितने पैसे मिलेंगे उसे तुम रख लेना। परन्तु एक बात का ध्यान रखना कि यह गाय दूध नहीं देती।' श्यामू को लगा कि बस अब तो लॉटरी खुल गयी। वह सबेरे गाय को और भी सजाकर बाजार में बेचने गया। सभी लोग गाय खरीदने के लिए श्यामू के पास आने लगे। परन्तु जैसे ही उनको पता लगता कि गाय दूध नहीं देती, तो वे मुँह बनाकर वहाँ से चले जाते। बेचारा श्यामू पूरा दिन बाजार में गाय बेचने के लिए खड़ा रहा, पर किसी ने भी उसकी गाय नहीं खरीदी। निराश होकर वह घर पहुँचा। नानाजी ने पूछा, 'किसी ने गाय खरीदी?' श्यामू के नहीं कहने पर नाना ने कहा, 'अरे, गाय को इतना सजाया था, फिर भी किसी ने उसे नहीं खरीदा?' श्यामू ने कहा, 'सजाने से क्या होगा, जब गाय दूध ही नहीं देती, तो कौन उसे खरीदेगा?' तब नानाजी ने यह बात श्यामू को समझाकर कही, 'तुम ठीक ही कह रहे हो। यही बात हम लोगों पर भी लागू होती है। केवल नये कपड़े-जूते आदि पहनने से ही हम बड़े नहीं हो जाते। व्यक्ति अपने गुणों से ही महान होता है।' श्यामू को अपने नाना की बात समझ में आ गई।

प्रस्तुति – स्वामी मेधजानन्द

'रामकृष्ण' नाम और नाम-साधना

स्वामी चेतनानन्द
(अनुवादक-ब्रह्मचारी पावनचैतन्य)

(गतांक से आगे)

श्रीरामकृष्णलीला-प्रंसग में विभिन्न स्थानों पर ठाकुर के आत्मपरिचय की विभिन्न उक्तियाँ हैं। जैसे ''सरकारी लोगों को जगदम्बा की जमींदारी में जहाँ कहीं भी कोई समस्या आयेगी, उसके समाधान के लिये उन्हें वहीं दौड़ना होगा।''[३९] 'जिसका अन्तिम जन्म है, वही यहाँ आयेगा। जिसने ईश्वर को एक बार भी ठीक-ठीक पुकारा है, उसे यहाँ आना ही पड़ेगा।''

''जिसका अन्तिम जन्म है, जिसका संसार में बार-बार आगमन और जन्म-मरण समाप्त हो गया है, वही व्यक्ति यहाँ आयेगा एवं यहाँ का भाव ग्रहण कर सकेगा।''

देखो, ध्यान करने के लिये ध्यान में बैठने से पहले एक बार (स्वयं को दिखाते हुये) इसका चिन्तन कर लेना। क्यों बोल रहा हूँ? – इसके ऊपर तुमलोगों का विश्वास है तो। इसे सोचने से ही उनका (भगवान का) स्मरण हो जायेगा।''

''तुम्हारे इष्ट (उपास्य देव) (स्वयं को दिखाते हुए) इसके भीतर हैं, इसके चिन्तन से उनका चिन्तन होगा।''

''इसे सोचने से ही मन एक जगह केन्द्रित हो जायेगा, और उसी मन से ईश्वर का स्मरण करने से ठीक-ठीक ध्यान होगा, इसलिये कहता हूँ।'

'मैं जैसा कहता हूँ, यदि उसी प्रकार चलते रहो, तो सीधे लक्ष्य तक पहुँच जाओगे।

तुम मेरा नाम लेन

श्रीरामकृष्ण के मुख से 'मैं' 'मेरा' शब्द शायद ही कभी सुना गया है। 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' और 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' में हम देखते हैं कि वे 'इसका', 'इसके भीतर', 'यहाँ का' इत्यादि शब्दों के द्वारा अपने बारे में संकेत करते थे। मैं और मेरा माया का जाल है। वे इस जाल को चिरकाल के लिये काट करके अनन्त के साथ विराज करते थे। स्वामी सारदानन्द जी ने 'लीलाप्रसंग' के गुरुभाव के पूर्वार्ध में 'भावमुख' की व्याख्या में ठाकुर के 'मैं' के तात्पर्य को स्पष्ट किया है। उन्होंने 'मैं' या अहं के चार स्तरों को दिखाया है। ठाकुर जब निर्विकल्प समाधि में तल्लीन होते थे, तब उनका 'मैं' निर्गुण ब्रह्म में विलीन हो जाता था। तत्पश्चात् एक स्तर नीचे आकर वही मैं ''विश्वव्यापी मैं या श्रीश्रीजगन्माता का मैं-पन ही ठाकुर के भीतर प्रकाशित होकर निग्रह-अनुग्रह सक्षम गुरु के रूप में अभिव्यक्त होता था।'' तब कल्पतरु सदृश होकर वे भक्त को पूछते थे, 'तू क्या चाहता है?' और एक स्तर नीचे आकर वे 'सन्तान मैं', 'भक्त मैं', 'दास मैं' दीनों के दीन अकिंचन रूप में माँ जगदम्बा के यन्त्र स्वरूप बनकर लोकशिक्षा देते थे। इसे ही वे 'पक्का मैं' कहते थे। यही विद्या-मैं का अन्तिम स्तर है। इसके नीचे का स्तर 'अविद्या- मैं' या 'कच्चा मैं' का है। कच्चा मैं का उदाहरण देकर ठाकुर कहते थे, ''मैं अमुक का पुत्र हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं धनी हूँ।'' यह 'मैं' बन्धन का कारण है। स्वामी सारदानन्द जी लिखते हैं, ''निर्विकल्प समाधि के बाद ठाकुर का 'छोटा मैं' या 'कच्चा मैं' पूर्णत: विलुप्त हो गया था।''[४०]

श्रीरामकृष्ण ने स्वामी तुरीयानन्द को भजन के द्वारा भक्त हनुमान की वाणी सुनाई थी, 'ओरे कुशी-लव करिस कि गौरव? धरा ना दिले कि पारिस धरिते?'' (भावार्थ - अरे कुश और लव ! गर्व क्या करते हो? यदि मैं स्वयं न पकड़ने देता, तो क्या तुम पकड़ सकते थे?'' ठाकुर कई बार दया करके किसी-किसी भक्त से पूछते थे, ''तुम्हारी मेरे बारे में क्या धारणा है? मेरा कितने आने ज्ञान हुआ है?'' चतुर्थ दर्शन के समय 'श्रीम' को यही प्रश्न पूछने पर वे उत्तर देते हैं, 'कितने आने' यह बात नहीं समझ पा रहा हूँ। लेकिन ऐसा ज्ञान, प्रेम, भक्ति, विश्वास, वैराग्य और उदारभाव कभी कहीं नहीं देखा।' ठाकुर ने हँस दिया। तत्पश्चात 'श्रीम' से कहते हैं, बलराम के घर में वह उनसे भेंट करे। 'श्रीम' प्रणाम करके चले गये। इसके बाद वे पुन: मुख्य द्वार से वापस आकर ठाकुर से बोले, ''महाशय, सम्भवत: लगता है वह धनी व्यक्ति का घर है। वे मुझे अन्दर जाने देंगे कि नहीं, इसलिये सोच रहा हूँ कि वहाँ नहीं जाँऊगा, यहीं आकर आप से मिलूँगा। श्रीरामकृष्ण बोले, 'नहीं जी, वैसा क्यों होगा? तुम मेरा नाम लेना। कहना कि मैं उनके पास जाऊँगा। ऐसा कहते ही कोई तुम्हें मेरे पास पहुँचा देगा।''[४१]

''तुम मेरा नाम लेना, तो कोई तुम्हें मेरे पास पहुँचा देगा।'' – यह बड़ी आशापूर्ण वाणी है। केवल श्रीम को ही नहीं, बल्कि संसार के दिग्भ्रमित सभी मानवों को ठाकुर

भगवान के पथ का निर्देश कर रहे हैं। उनका नाम लेने से सभी मुक्त हो जायेंगे, वह चाहे धनी के भवन में हो या संसार के झमेले में हो। जैसे राजकुमार राजमहल में स्वतन्त्रत-पूर्वक विचरण करता है एवं पहरेदार उसका ससम्मान अभिवादन करके राजकुमार के लिये द्वार खोल देते हैं, उसी प्रकार महामाया अवतारों के आत्मीय या अन्तरंगों हेतु स्वेच्छा से आग्रह्मपूर्वक मुक्ति का दरवाजा खोल देती हैं। क्योंकि अवतार मायाधीश हैं।

एकदिन बातचीत के दौरान ठाकुर श्रीम से कहते हैं, "यहाँ दो प्रकार के भक्त आते हैं। पहले प्रकार वाले कहते हैं, 'हे ईश्वर ! मेरा उद्धार करो !' और दूसरे प्रकार वाले अंतरंग हैं। वे वैसी बात नहीं कहते। उन्हें दो चीजें जानने से ही हुआ, प्रथम, मैं (श्रीरामकृष्ण) कौन हूँ, वे कौन हैं और मेरे साथ उनका क्या सम्बन्ध है? तुम दूसरे प्रकार के भक्त हो।"[४२] अवतार के साथ एकबार सम्बन्ध बना लेने पर मनुष्य-जीवन सफल हो जाता है, संसार के दुखों का नाश हो जाता है और मृत्यु का भय दूर हो जाता है। 'मैं रामभक्त हूँ', इसी रामनाम के बल पर महावीर हनुमान सर्वत्र विजयी होते थे एवं असम्भव को सम्भव कर देते थे।

१ जनवरी, १८८६ को श्रीरामकृष्ण काशीपुर में कल्पतरु होकर एकत्रित भक्तों को 'चैतन्य हो' कहकर आशीर्वाद दिये थे। रामचन्द्र दत्त नवगोपाल घोष से कहते हैं, "महाशय, आप क्या कर रहे हैं? ठाकुर आज कल्पतरु हुए हैं। जाइए, शीघ्र जाइए। यदि कुछ माँगना हो, तो इसी समय माँग लीजिए। यह सुनकर नवगोपाल द्रुतगति से ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके बोले, 'प्रभु मेरा क्या होगा?" ठाकुर थोड़ा मौन रहकर बोले, "थोड़ा जप-ध्यान कर सकोगे? नवगोपाल – मैं बाल-बच्चोंवाला गृहस्थ व्यक्ति हूँ। परिवार के अनेक लोगों के पालन-पोषण के लिये मुझे विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता है, मुझे इतना समय कहाँ है?" ठाकुर – तो क्या थोड़ा-थोड़ा जप नहीं कर सकोगे?" नवगोपाल –"उसके लिये भी समय कहाँ है?" ठाकुर – "अच्छा, थोड़ा-थोड़ा मेरा नाम कर सकोगे तो?" नवगोपाल – "वह तो बहुत कर सकूँगा।" तब ठाकुर बोले – "उतना करने से ही होगा, तुम्हें और कुछ नहीं करना पड़ेगा।'

दयालु ठाकुर भक्तों के दु:ख से कातर हो ईश्वर-प्राप्ति का सहज सरल पथ दिखा देते थे। गीता के द्वादश अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि तुम मुझमें चित्त स्थिर न कर सको, तो अभ्यास योग का प्रयोग करो। यदि वह न कर सको, तो भगवत् कर्मपरायण होओ, यदि वह भी न कर सको, तो मेरे योगपरायण और संयतात्मा होकर सब कर्मों के फल का त्याग करो। इस प्रकार भगवान में मन को लगाने के लिये श्रीकृष्ण ने अनेकों मार्ग का निर्देश किया है। उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण किसी से कहते, "तुम माँ काली के मन्दिर में तीन दिन कुछ जप करो। किसी से कहते, यदि तीन दिन न कर सको, तो एक दिन करो। किसी से कहते, यदि तुम कोई जप-ध्यान न कर सको, तो यहाँ का (अर्थात् ठाकुर का) स्मरण-मनन करो। किसी से कहते, तुम्हें कुछ नहीं करना होगा, यहाँ आने से ही होगा, यही तो आज आये हो, पुन: दो दिन आओ। किसी से कहते, तुम एकबार मंगलवार या शनिवार को आओ, वैसा करने से होगा। कभी-कभी स्नेहपूर्वक कहते, यहाँ आकर सरल हृदय से जो कहेगा, 'हे ईश्वर तुम्हारा तत्त्व या तुम्हें किस प्रकार जानूँगा !' वह निश्चय ही उनका तत्त्व पायेगा, पायेगा, पायेगा।" (श्रीरामकृष्ण महिमा, पृ.६४) किसी की जिह्वा में लिख देते थे। किसी से कहते, "मेरा चिन्तन करने से ही होगा, मेरा ध्यान करने से ही होगा।"[४४]

रामकृष्ण नाम का प्रसार हो रहा है

दीपक के नीचे अँधेरा रहता है, किन्तु वही दीपक दूर तक प्रकाशित करता है। श्रीम एक बार कामारपुकुर जाते हैं। वहाँ के एक वृद्ध ब्राह्मण श्रीम का परिचय जानकर उनसे कहते हैं, "अरे, तुम गदाई के भक्त हो? इतनी पढ़ाई-लिखाई करके तुम कैसे उसके भक्त हुए? उसने तो कोई शास्त्र नहीं पढ़ा। मूर्ख था।" श्रीम ने उन पण्डित को ठाकुर के कुछ उपदेश सुनाए। चील-गिद्ध आकाश में बहुत ऊँचे उड़ते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि गंदे स्थान पर रहती है। पञ्जिका में दिया है बीस मिली मीटर वर्षा होगी, किन्तु पञ्जिका निचोड़ने पर एक बूँद पानी भी नहीं टपकता। वाद्य यंत्रों के बोल को कहना सरल है, किन्तु उन्हें बजाना कठिन होता है। उसके बाद वे पण्डित पश्चाताप करने लगे।[४५]

प्रत्यक्षदर्शी अक्षयकुमार सेन लिखते हैं, "महापुरुषों के समीपस्थ लोग उन्हें समझ नहीं पाते, दूर के लोग उनके भाव में मुग्ध हो जाते हैं।... ग्रीष्मकाल में एक दिन दक्षिणेश्वर के पंचवटी की शीतल छाया में श्रीरामकृष्ण देव के निकट उनके कुछ भक्त बैठे हुए हैं। अनेकों प्रकार की ईश्वरीय-चर्चा चल रही है, ऐसे समय बातों ही बातों में, आड़ियादह, दक्षिणेश्वर और वराहनगर के लोगों की बात

उठी। ठाकुर के ऊपर इनका जटिला–कुटिला का भाव है, इसलिये एक भक्त कौतुहलवश ठाकुर से पूछते हैं, 'कितने दूर-दूर से लोग यहाँ आकर शान्ति प्राप्त कर जाते हैं और ये क्यों नहीं आते? ठाकुर मुख से उत्तर न देकर, एक रस्सी से बँधी गाय को दिखा देते हैं। गाय गंगा के गर्भ में एक मैदान में बँधी थी, अब वह गंगा के जल को देखकर बेचैन हो रही है। गाय को देखकर उस बात का उत्तर कोई समझ न सका। रामकृष्ण देव की कैसी महिमा है ! तभी चार-पाँच स्वाधीन गायें गंगा में उतरकर इच्छानुसार पानी पीकर तट पर आ गयीं। तब ठाकुर ने समझा दिया कि उस गाय को भी बहुत प्यास लगी है, परन्तु वह बँधी हुई है, इसलिये पानी निकट होते हुए भी पी नहीं पा रही है, और ये गायें स्वतंत्र थीं, अत: प्यास लगते ही पानी पी लीं। यहाँ के लोग बँधे हुए हैं, इसलिये नहीं आ पाते।''[४६]

ध्वनि दूर में प्रतिध्वनित होती है। दक्षिणेश्वर मन्दिर के उद्यान से श्रीरामकृष्ण की जो वाणी नि:सृत हुई थी, वह अभी समुद्र को पार कर देश-देशान्तर में प्रसारित हो रही है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि ''नाम मनुष्य को प्रसिद्ध नहीं करता, मनुष्य अपने कर्म से नाम को प्रसिद्ध करता है।'' कुछ दिन पहले मैंने Thoms Merton : A Monk नामक पुस्तक पढ़ी थी। थॉमस मॉर्टन एक विख्यात लेखक और ट्रापिस्ट संन्यासी थे। १९६८ ई में उनकी मृत्यु पर विभिन्न कैथोलिक संन्यासी और संन्यासिनियों की स्मृति की यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी। एक दिन भगवत् प्रेम के सम्बन्ध में चर्चा हो रही थी। थॉमस – ''यदि तुम दूसरों को प्रेम करोगे, तो ईश्वर के प्रेम की अनुभूति होगी। वही प्रेम तुमसे तुम्हारे मित्र को मिलेगा और मित्र द्वारा तुम्हें प्राप्त होगा।'' डेविड, ''परन्तु क्या इन सबमें व्यावहारिक द्वैतवाद नहीं है?'' थॉमस, ''वास्तव में ऐसा नहीं है और है भी। तुम्हें अपनी इच्छा और ईश्वर की इच्छा दोनों को ही लम्बे समय तक द्वैतभाव से देखना होगा। जब तक तुम एकत्व की अनुभूति नहीं कर लेते, तब तक तुम्हें द्वैत की अनुभूति लम्बे समय तक करनी होगी। इस सिद्धान्त के अनुसार मैं हिन्दू हूँ और इसका समाधान श्रीरामकृष्ण के पास है।''[४७]

मैं कुछ वर्ष पहले कैनवस शहर के एक जापानी रेस्तराँ में तीन अमेरिकी भक्तों के साथ खाना खाने गया था। मुझे देखकर एक जापानी परिचारिका ने पूछा – ''क्या आप भारत से हैं?'' मैंने कहा – हाँ। वह कन्या आनन्द से स्वप्रेरणा से बोल उठी – ''मैं रामकृष्ण को जानती हूँ।'' मैं आश्चर्यचकित होकर पूछा – ''तुम रामकृष्ण को कैसे जानती हो?'' तब उसने बताया कि वह कैलिफोर्निया के कोस्टा मेला योगकेन्द्र से जुड़ी थी और वहाँ श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में पढ़ी है। अभी भी उस जापानी कन्या के जापानी उच्चारण के शब्द – 'मैं रामकृष्ण को जानती हूँ', मेरे कानों में गूँज रहे हैं। ○○○ समाप्त

सन्दर्भ

३९. श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, भाग २, पृ. २०७; **४०.** वही, पृ. १०६; **४१.** कथामृत, १/२/६; **४२.** वहीं, ४/१४/१; **४३.** श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका – स्वामी गंभीरानन्द, २खण्ड, ३७८; **४४.** श्री म दर्शन, २खण्ड, पृ. ५६, ५८,१४०; **४५.** श्री म दर्शन, ९ म खंड, पृ. १४१-१४२; **४६.** श्री रामकृष्ण महिमा, पृ: ४५; **४७.** Thomas Merton : A Monk, Sheed & word, Inc. Newyork, 1974, P88-89

माँ तुम ही हो द्वार

मोहनसिंह मनराल, अलमोड़ा

माँ तुम ही हो द्वार
करना प्रवेश जहाँ मुझे, मत करना इनकार ।।
माँ तुम ही हो द्वार ।।
द्वार मुक्ति का, द्वार भक्ति का खोलो हूँ लाचार ।
कैसे आऊँ पास तुम्हारे बंद पड़े किवाड़ ।।
माँ तुम ही हो द्वार ।।
कितना चाहे जोर लगाऊँ, मगर किवाड़ खोल न पाऊँ ।
दो नावों में पाँव है मेरे, कैसे पास तुम्हारे आऊँ ।
डूबूँ तो नाम तुम्हारा लेकर किया यही स्वीकार ।।
माँ तुम ही हो द्वार ।।
मेरे भटके इस मन को जग का कोई रंग न भाया ।
रंग बिरंगी इस दुनिया को मैंने बेरंगी ही पाया ।।
अपने रंग में रंग दो मन पतझड़ में आ जाये बहार ।।
माँ तुम ही हो द्वार।।
डर क्या है मुझ माँ के रहते तुमने अभय दिया है ।
मुझ जैसे दीनातिदीन का तुमने भार लिया है ।।
यही भरोसा है जीने का सदा तुम रही निहार ।।
माँ तुम ही हो द्वार।।

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

११. प्रश्न - बुरे विचार कैसे हटाएं और और आत्मविश्वास कैसे बढ़ाएं?

उत्तर - यह प्रश्न अखरोट या बादाम के फल के सामान है, जिसमें हम केवल उन फलों के खोपड़ों को ही देख पाते हैं। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर के लिये पहले हमें जीवन के एक मौलिक प्रश्न पर विचार करना पड़ेगा और वह मौलिक प्रश्न है, जीवन में हम वस्तुत: चाहते क्या हैं?

जीवन के अस्तित्व के लिये रोटी, कपड़ा, मकान तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों तक ही मनुष्य का जीवन सीमित नहीं है। यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है कि हम सभी रोटी, कपड़ा, मकान आदि चाहते हैं। मानव जीवन की ये अनिवार्य आवश्यकतायें हैं, किन्तु लक्ष्य नहीं।

केवल मनुष्य ही क्यों संसार में जितने भी प्राणी हैं, कीट पतंग से लेकर हाथी तक सभी को भोजन तथा निवास स्थान की जीवन पर्यन्त आवश्यकता रहती है, किन्तु यह जीवन का लक्ष्य नहीं है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसकी रोटी, कपड़ा, मकान आदि मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर उसके मन में एक स्वाभाविक प्रश्न आता है कि अन्तत: इस जीवन का लक्ष्य क्या है या मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मनुष्येतर कोई भी प्राणी कभी भी यह नहीं सोचता कि जीवित रहने के लिये आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के अतिरिक्त उसके जीवन का कोई लक्ष्य है क्या? जीवन में अच्छे-बुरे का प्रश्न तभी जागता है, जब जीवित रहने के लिये मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तब मनुष्य के मन में अच्छे-बुरे का विचार आता है। क्योंकि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था हो जाने पर यह सोचता है कि मेरे जीवन का अर्थ क्या है? लक्ष्य क्या है? और तभी उसके मन में अच्छे-बुरे का विचार, नैतिक-अनैतिक का विचार, धर्म-अर्धम का विचार आदि भावनायें आती हैं।

मनुष्य पशु के समान केवल खान-पान तथा इन्द्रियों के अन्य भोगों को भोगकर कभी-भी जीवन में सच्ची शान्ति और सच्चा सुख नहीं पा सकता। मनुष्य के मन में शाश्वत शान्ति एवं शाश्वत सुख पाने की एक अदम्य इच्छा है। उस इच्छा को मनुष्य-जीवन में सदैव के लिये दमित नहीं किया जा सकता। मनुष्य समझे या न समझे, उसके हृदय में शाश्वत सुख एवं शाश्वत शान्ति की इच्छा जन्मजात है, जो मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हो जाती। इसीलिये जीवन को विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है। उन योनियों के भोगों के बाद वह पुन: मनुष्य जन्म प्राप्त करता है, चाहे इसमें लाखों जन्म क्यों न लग जायें। पुन: मनुष्य योनि पाकर वह शाश्वत शान्ति की खोज में लगता ही है। तभी उसके मन में सचमुच अच्छे-बुरे का विचार उठता है।

अत: हमें अभी से मनुष्य जीवन के परमलक्ष्य के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये।

अच्छे-बुरे के विचार भी देश-काल पात्र के अनुसार भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जैसे मांसाहारी प्राणियों के लिये पशु-पक्षियों का वध बुरा नहीं समझा जाता, उतना ही नहीं, बल्कि इसे उचित और आवश्यक समझा जाता है।

युद्ध में शत्रु-पक्ष के सैनिकों का वध उचित और अच्छा समझा जाता है। शत्रु की धन-सम्पत्ति का हरण कर लेना उचित और न्यायपूर्ण समझा जाता है। किन्तु यह सब बातें तभी प्रांसगिक होती हैं, जब मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य की धारणा हमारे मन में स्पष्ट नहीं होती।

मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है अपने हृदय में अवस्थित नित्य-मुक्त-शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य-शाश्वत-आनन्दस्वरूप-अमर आत्मा की, मृत्यु के पूर्व अनुभव कर लेना।

आत्मविश्वास का अर्थ है अपनी स्वयं की शक्तियों तथा योग्यताओं पर विश्वास। यह तभी सम्भव है, जब हम अपने दैनिक छोटे-बड़े कार्यों को निष्ठापूर्वक एकाग्र मन से करने का सतत् अभ्यास डालें तथा जो कार्य हाथ में लिया है अथवा परिस्थिति के कारण हमारे कन्धे पर उसका भार आ पड़ा है, किसी भी परिस्थिति में अपनी शक्ति के अनुसार उस कार्य में पूर्णता प्राप्ति तक निरन्तर लगे रहें। ऐसा करने पर ही आत्मविश्वास धीरे-धीरे बढ़ता जायेगा और हम एक दिन पूर्ण आस्थावान एवं आत्मविश्वासी हो जायेंगे। ○○○

प्रेमसिन्धु श्रीमाँ सारदा

श्रीमती इन्दु कायलकर, नागपुर

बाँकुड़ा जिले में जयरामवाटी नामक एक छोटा सा गाँव है। उसी गाँव में श्रीमाँ सारदा देवी का जन्म हुआ। आज वही गाँव विश्व का एक महान तीर्थस्थान बन गया है। वैकुण्ठ से साक्षात् लक्ष्मी सारदा के रूप में आयी। यही काली, दुर्गा, सीता, राधा सब थीं। यही जगज्जननी थी। इसी सारु का छठे वर्ष की आयु में गदाधर से विवाह हुआ। बाद में यही छोटी सारदा दया एवं कृपा की अथाह महासागर बनी।

एक बार श्रीमाँ के घर की मरम्मत हेतु कुछ मजदूर आये हुए थे। वे घर के ऊपर चढ़कर उसकी मरम्मत कर रहे थे। दोपहर हो गयी। माँ ने कहा, "अरे नीचे उतरो, पहले भोजन कर लो, बाद में काम शुरू करना।" उनमें से दो मजदूरों ने नीचे उतरकर भोजन किया। परन्तु उनके अलावा अमजद नाम का एक मुसलमान मजदूर भी था। 'अभी थोड़ा सा काम बचा है, उतना करके आता हूँ' ऐसा कहकर वह पूर्ववत् मरम्मत का काम कर रहा था। जब बाकी दोनों मजदूरों ने कहा, 'अरे, माँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं, उन्होंने अभी तक भोजन नहीं किया। तुम पहले भोजन कर लो।' वह तुरन्त नीचे उतरा और माँ को जाकर बोला, 'इतनी देर तक तुम मेरे लिए रुकी हुई हो।' माँ ने कहा, 'अरे, तुम सब मेरे बच्चे हो। तुम्हें न खिलाकर मैं पहले भोजन कैसे कर सकती हूँ?' दूसरे मजदूर अलग जाति के थे और यह तो मुसलमान था। भोजन के बाद वह अपनी जूठी पत्तल उठाने लगा, तो माँ उसे ऐसा नहीं करने को कहकर स्वयं ही उठाने लगीं। तब वह बोला, 'माँ, आप ब्राह्मण हैं, यह आप क्या कर रही हैं, लोग आपको भला-बुरा कहेंगे?' माँ ने कहा, 'वह सब मैं देख लूँगी।' अमजद के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ! उन्नीसवीं सदी के, उस समय की एक कुलीन ब्राह्मण-स्त्री का ऐसा भेद-भावरहित आचरण, सचमुच में विचारणीय बात है। इससे हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। आज भी हम 'यह हरिजन' 'यह मुसलमान' ऐसा मानते हैं और धर्म-भेद, जाति-भेद इत्यादि को भूल नहीं पाते। यदि श्रीमाँ को हम अपनी सचमुच की माँ की तरह मानते हों, तो हमें भी इस जातिभेद और धर्म-भेद को छोड़ना चाहिए और तभी हम अपने को उनकी सन्तान कहलाने के योग्य हैं।

ऐसे ही माँ के पास एक निम्न वर्ग की बूढ़ी आती थी। एक दिन माँ ने उसे सहजन की सब्जी बनाकर लाने को कहा। वह सब्जी बनाकर माँ के पास लेकर आयी। माँ भी उसी समय सब्जी का बर्तन हाथ में लेकर सब्जी खाने लगीं। इतने में गोलाप-माँ वहाँ पहुँच गईं और माँ से कहने लगीं, 'उसकी लायी हुई सब्जी आप क्यों खा रही हैं, आपको सहजन की सब्जी खानी थी, तो मुझसे कह दिया होता, मैं बनाकर दे सकती थी।'' इस पर माँ ने कहा, 'अरी गोलाप ! भक्त की भी क्या कोई जात-पात होती है, भक्त अपने आप में ही तो एक जाति है ! तब गोलाप माँ चुप हो गईं और उन्हें यह बात भी जच गई।

कुछ ही दिनों पहले की एक घटना है। कोलकाता के रामकृष्ण मिशन, इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर के पुस्तक विक्रय-विभाग से दो महिलाएँ एक पुस्तक खरीदकर बाहर आयीं। बाहर एक रिक्शा खड़ी थी। वे उस रिक्शा में चढ़ीं और रिक्शा वाला उन्हें उनके घर तक छोड़ आया। इसी बीच रिक्शावाले की दृष्टि उनकी हाथ में रखी पुस्तक के मुखपृष्ठ पर गयी। मुखपृष्ठ पर माँ सारदा का चित्र था और उसे देखकर वह बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। वह उन्हें छोड़कर पुन: इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर के पुस्तक विक्रय-विभाग में पहुँचा और वहाँ के महाराज से पूछा, 'अभी कुछ देर पहले दो महिलाएँ जो पुस्तक ले गयी थीं, उसके मुखपृष्ठ पर एक महिला का चित्र था, वह चित्र मुझे चाहिए।' महाराज ने उसे कुछ पुस्तकें दिखायीं, पर वह हर बार नहीं बोलता गया। पुन: एक पुस्तक दिखायी, तो वह बोल उठा, 'हाँ ! यही पुस्तक मुझे चाहिये।' महाराज ने उससे पूछा, 'यह पुस्तक लेकर तुम क्या करोगे? क्या तुम्हें पढ़ना आता है?' 'नहीं।' 'तो यह पुस्तक क्यों खरीदना चाहते हो?' तब उसने कहना शुरू किया, 'इस चित्र में जो महिला है, वह मुझे स्वप्न में दिखी थीं, तभी से यह मुझे मेरी माँ जैसी ही लगती हैं। मेरी माँ बचपन में ही मर गयी थी। मुझे माँ का प्रेम नहीं मिला, पर यह मुझे अपनी माँ ही लगती है।' उसने कहा, "मेरा बेटा नवनीत स्कूल में जाता है, वह मुझे पढ़कर सुनाएगा।" उसने पुस्तक की कीमत पूछी, तो वह एक सौ रूपये की थी। उसने कहा, "मेरे पास तो केवल दस रूपये हैं।" उसकी व्याकुलता देखकर महाराज ने बिना पैसे लिये ही उसे पुस्तक दे दी।

ऐसे ही एक अन्य प्रसंग। एक बार कुछ साधु लोग गाड़ी में बैठकर एक गाँव से जा रहे थे। अचानक उनकी गाड़ी खराब हो गयी। वे सब गाड़ी से उतरे और पास में ही उन्हें एक चाय की दुकान दिखी। चायवाला मुसलमान था। उसकी दुकान में माँ सारदा का एक केलेन्डर लगा हुआ था। साधु लोगों में से एक ने पूछा, 'यह महिला कौन है?' उस मुसलमान ने कहा कि वह नहीं जानता है। 'तो,

फिर क्यों यह चित्र टाँगा है?' तब वह बोला, 'यह मुझे अपनी माँ के समान ही लगती है।' इससे ज्ञात होता है कि किस तरह माँ सबके हृदय में अनन्त सागर के समान व्याप्त हैं। इस प्रसंग में ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की बात स्मरण हो आती है। एक बार माँ ने ठाकुर से कहा था, 'मेरी इच्छा है कि कोई मुझे माँ कह कर पुकारे।' इस पर ठाकुर ने कहा, 'अरे, तुम्हें कितने बच्चों की पुकार सुननी है? तुम तो सबकी माँ होने वाली हो।' ठाकुर की यह वाणी आज सचमुच सार्थक हो गयी है।

एक लड़की, जिसकी उम्र लगभग १४-१५ वर्ष रही होगी, उससे बड़ी भूल हो गई। उसके माँ-बाप ने उसे घर से निकाल दिया। वह बागबाजार में माँ के घर की सीढ़ियों पर बैठकर रोने लगी। माँ ने उसकी रोने की आवाज सुनकर उसे ऊपर बुलाया। तब वह लड़की बोली, माँ, मुझसे एक बहुत बड़ी भूल हो गई है। तुम सुनोगी तो तुम भी मुझे धिक्कारोगी, मेरे माँ-बाप तक ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया है।' किन्तु माँ ने बड़े स्नेह से उसे ऊपर बुलाकर अपने पास बैठाया। अब बताइये कि कौन हमारी सचमुच की माँ है? हमारी जन्मदात्री माँ हमें धिक्कार सकती है, पर यह जो हमारी अपनी माँ है, हमें कभी भी अपने से अलग नहीं कर सकती। इसलिये यही हमारी सचमुच की माँ है।

एक बार एक विधवा स्त्री के कान में घाव हो गया और उसे बहुत पीड़ा होने लगी। उसके पास उसकी देखभाल के लिये अन्य कोई नहीं था। केवल उसे एक छोटा बच्चा था। उस समय जयरामबाटी में डॉक्टर, वैद्य नहीं होते थे और इसीलिए औषधि की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। उसके कान में मवाद होकर कीड़े पड़ने लगे। कान की दुर्गन्ध के कारण कोई उसके पास तक नहीं जाता था। असहाय विधवा वेदना के कारण तड़पती रहती थी। माँ को जब उसके बारे में पता लगा, तो उन्होंने तुरन्त नीम के पत्तों को पानी में उबाला और एक ब्रह्मचारी सेवक के साथ उबाला हुआ पानी लेकर उसके पास गयीं। माँ ने पिचकारी मारकर उस विधवा के कान का घाव साफ किया और सेवा-शुश्रुषा कर दोपहर को अपने घर लौट आयीं। उसी समय कोआलपाड़ा आश्रम से एक ब्रह्मचारी माँ के लिए कुछ सामान लेकर आया। उसे देख माँ आनन्द के साथ बोलीं, 'देखो बेटा ! तुम रोगियों को ले जाकर उनकी सेवा-शुश्रुषा करते हो न ! तो फिर केदार (कोआलपाड़ा आश्रम के अध्यक्ष, स्वामी केशवानन्द) से कहना कि उस विधवा स्त्री को वहाँ ले जाकर उसकी सेवा-शुश्रुषा की अच्छी व्यवस्था कर सके, तो बहुत अच्छा होगा। उस बेचारी का कोई भी नहीं है। औषधि आदि के अभाव में उसका कान सड़ गया है और दुर्गन्ध के कारण कोई उसके पास नहीं जाता। इस कारण उसके बच्चे की भी दयनीय दशा हो गई है।' तुरन्त अगले दिन सुबह कोआलपाड़ा आश्रम के ब्रह्मचारीगण डोली न मिल सकने के कारण एक बैलगाड़ी लेकर आये। इतने में माँ फिर से उस स्त्री के घर जाकर उसका घाव धो आयीं। वहाँ से कोआलपाड़ा का रास्ता पाँच मील का है। उस स्त्री को एक खाट पर लेटाकर उस खाट को बैलगाड़ी पर रखा गया। माँ ने उसे थोड़ा गरम दूध पीने को दिया और उसे खूब आश्वासन दिया। उसे कोआलपाड़ा ले जाया गया, किन्तु वहाँ उसकी सेवा-सुश्रुषा करने के अनन्तर भी उसके स्वास्थ्य में कुछ आवश्यक सुधार नहीं हुआ और वहीं चार-पाँच दिन के बाद वह चल बसी। माँ ने पूरा वृत्तान्त सुनकर कहा, 'तुम लोगों ने उसकी पुत्रवत् सेवा की है, वह यदि यहाँ पर रहती तो तड़प कर मर जाती।' सचमुच, माँ का सेवाभाव देखकर मन चकित हो जाता है। दुख-कष्ट से घिरे लोगों के प्रति उनकी कितनी हार्दिक सहानुभूति थी, यह देखने में आता है।

माँ ने एक बार कहा था कि सहनशीलता बहुत बड़ा गुण है, उससे बड़ा कोई दूसरा गुण नहीं। श ष स - सहन करो, सहन करो, सहन करो। जो सहता है, वह रहता है, जो नहीं सहता, वह नहीं रह पाता है। माँ कहती थीं कि सहनशीलता हो, तो भगवान शंकर के जैसी। कड़ाके की ठण्ड पड़ रही है, किन्तु इस ठण्ड में भी लोग घड़े-के-घड़े उनके सिर पर पानी डाल रहे हैं । लेकिन क्या वे कुपित होते हैं? भगवान शंकर का असीम धैर्य है। माँ की सहनशीलता भी ऐसी ही है। स्वयं कष्ट सहकर भी वे दूसरों को तृप्ति, सुख देती थीं।

जैसे नारद मुनि के कारण वाल्मीकि एक डाकू से ऋषि बने, अंगुलीमाल को भगवान बुद्ध ने अपने संघ में स्थान दिया, जिस तरह चैतन्य महाप्रभु के जीवन में जगाई-मधाई का उद्धार हुआ, ठीक वैसे ही यह बात गिरीश घोष के सम्बन्ध में थी। भगवान श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में गिरीश बाबू का वर्णन तो हम सबको ज्ञात ही है। उनके पाप-ग्रहण करने से ठाकुर को कैंसर की व्याधि हुई थी और उन्हें देहत्याग करना पड़ा था। सब कुछ जानते हुए भी ठाकुर ने उन्हें आश्रय दिया था। ऐसे पतितपावन थे वे ! ऐसे ही एक बार गिरीश बाबू जयरामबाटी गये। स्नान करने के बाद गीले कपड़े में ही वे भावविह्वल होकर माँ के दर्शन के लिए गये। माँ को प्रणाम कर जब उन्होंने ऊपर देखा, तो परदे की आड़ में उन्हें माँ का थोड़ा चेहरा दिखाई

दिया। वे आश्चर्यचकित होकर बोले, 'माँ, तुम हो।' इस घटना का सम्बन्ध गिरीश घोष के जीवन में एक अन्य रहस्यमय घटना से था।

युवावस्था में गिरीश घोष को एक बार हैजा का रोग हो गया था। रोग इतना बढ़ गया कि उनके परिजनों ने उनके जीवन की आशा ही छोड़ दी थी। ऐसे समय गिरीश घोष को स्वप्न में एक देवी का दर्शन हुआ। वे देवी लाल किनारीवाली साड़ी पहनी हुई थीं और तेजपुंज एवं वात्सल्यमयी दिख रही थीं। उन्होंने गिरीश घोष के मुख में थोड़ा प्रसाद डालकर उसे खाने को कहा। प्रसाद खाते-खाते ही उनकी निद्रा भग्न हुई। परन्तु उस प्रसाद का स्वाद काफी समय तक उनकी जिह्वा पर था और वे देवी चारों ओर से उनका रक्षण कर रही हैं, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। उनका स्वास्थ्य क्रमशः सुधरता गया। स्वप्न में देखी हुई उन देवी को इतने वर्षों बाद आज मनुष्य रूप में देखकर उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। परदे की आड़ में उन्हें किसने बचाया, यह उनको आज पता लगा।

इसलिये, हम पापी हैं, ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये। गिरीश जैसे कितने ही लोगों को ठाकुर,माँ ने भवसागर से पार किया। हमारे जीवन में भी यदि हमसे कोई भूल हो जाती है, तो निराश नहीं होना चाहिए। माँ की शरण में मात्र जाने से ही वे सबका मंगल करती हैं। ऐसा विश्वास होने से ही कार्य बन जाता है। माँ की सहनशीलता सचमुच में असीम ही थी। कितने लोग अपने पाप-तापों के भार सहित माँ का चरण-स्पर्श कर प्रणाम करते थे। उनकी पापाग्नि से माँ को शरीर-दाह की यंत्रणा होती थी, पर वे शान्त चित्त से सब कुछ सहन करती जाती थीं।

एक बार माँ बरामदे मैं बैठकर गंगा-जल से घुटनों तक अपने पाँव बार-बार धो रही थीं। माँ के एक सेवक ने जब देखा, तो इसका कारण पूछा। तब माँ ने कहा, 'इसके बाद किसी को मेरे पाँवों पर सिर रखकर प्रणाम करने मत देना। सब लोगों के पाप यहाँ आकर चिपक जाते हैं और मेरे पाँवों में असहनीय जलन-सी होती है। इसलिये मुझे पाँवों को धोते रहना पड़ता है। अब सबको दूर से ही प्रणाम करने के लिये कहना।' ऐसा उन्होंने कह तो दिया, किन्तु अगले ही क्षण दयामूर्ति माँ बोल उठीं, 'किन्तु यह सब शरत् (स्वामी सारदानन्द) से मत कहना, नहीं तो वह सबका प्रणाम बन्द करा देगा।' लोग माँ को प्रणाम कर अपने पाप-तापों से मुक्त होते थे।

एक बार जयरामबाटी में एक छोटा-सा लड़का माँ को प्रणाम कर माँ के पास बैठ गया। वह माँ से अकेले में कुछ कहना चाहता था, पर वह बात कैसे होगी, यह उसे सूझ नहीं रहा था। दुखित मन से वह लड़का वैसे ही बरामदे में बैठा रहा। माँ उसके मन की व्यथा समझ गईं और उससे कहा, 'बेटा ! अन्दर आओ तो, तुझे जो कहना है, कहो।' तब उस लड़के ने कहा, 'नहीं माँ, यहीं बैठता हूँ, मैं निम्न जाति का हूँ। माँ ने कहा, अरे, तू निम्न जाति का है, यह तुझसे किसने कहा? तु तो मेरा बेटा है, आओ, अन्दर आकर बैठो। अरे ! भक्त की भी क्या कोई जात-पात होती है? भक्त अपने आप में ही एक जाति होती है। अस्पृश्य भी भक्ति से शुद्ध हो जाता है। चाण्डाल भी यदि भक्ति करे, तो वह चाण्डाल नहीं रहता।

एक बार बेलूड़ मठ में स्वामी विवेकानन्द ने एक नौकर को चोरी के अपराध में नौकरी से निकाल दिया। उस समय माँ बागबाजार में किराये के मकान में रहती थीं। वह नौकर रोते-रोते माँ के पास गया और कहा, 'माँ, घर में बीबी-बच्चे हैं, इतने कम वेतन से मेरा गुजारा नहीं होता, इसलिए मुझसे यह भूल गई है।' माँ को उस नौकर के ऊपर दया आ गई और उसे आश्रय दिया। उसी दिन बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) माँ के दर्शन के लिए वहाँ आये। माँ ने उनसे कहा, 'देखो बाबूराम, वह बहुत गरीब है और परिस्थितिवश उससे वह भूल हो गई है, इतने से ही नरेन (स्वामी विवेकानन्द) ने क्यों उसे नौकरी से निकाल दिया? तुम लोग तो संन्यासी हो। संसार का कष्ट तुम लोगों को क्या समझ आयेगा? तुम लोगों को संसार का क्या अनुभव है? तुम उसे फिर से मठ ले जाओ।' तब बाबूराम महाराज ने कहा, 'ऐसा करने से स्वामीजी चिढ़ जाएगें।' तब माँ ने थोड़ा ऊँचे स्वर में कहा, 'मैं कहती हूँ, उसे अपने साथ ले जाओ।' बाबूराम महाराज चुपचाप उसे बेलूड़ मठ ले आये। बाबूराम महाराज को उस नौकर को साथ लाते देख स्वामीजी बोले, 'देखो तो बाबूराम का साहस ! उस आदमी को फिर से यहाँ लेकर आया !' जब बाबूराम महाराज ने बताया कि माँ ने इसे मेरे साथ भेजा है, तब स्वामीजी चुप रहे और उसे नौकरी पर रख दिया। ऐसी है, यह हम सबकी माँ ! अच्छे-बुरे सबको अपने प्रेम में समाहित करनेवाली माँ ! उस माँ के अन्दर दया का, कृपा का और मातृप्रेम का अनन्त स्रोत बह रह रहा था और वह स्रोत एक अथाह महासागर था। आइए, उस अथाह महासागर में हम सब डूबने का प्रयत्न करें और उस माँ को कोटि-कोटि नमन करें ! जय महामाई की जय। ○○○

(मूल मराठी से अनुवाद - स्वामी मेधजानन्द)

वेदों में विश्वबन्धुत्व की भावना

जे. पी. श्रीवास्तव, गंगोत्री नगर, जयपुर

भारतीय सभ्यता व संस्कृति का आधार है वेद। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वेदों की रचना भारतवासियों को ही केवल केन्द्र में रखकर की गई है। ऐसी मान्यता भी है कि वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् ईश्वरकृत हैं, मानवकृत नहीं। परमात्मा ने जब मानव की रचना सृष्टि के प्रारम्भ में की तो उसको वेद रूपी ज्ञान भी प्रदान किया। अत: वेद का ज्ञान समस्त मानवों के लिये है। चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है, जो किसी विशेष समुदाय या वर्ग के व्यक्तियों को सम्बोधित करता हो। सभी मन्त्र मानवमात्र के कल्याण तथा उनमें एकात्म तत्त्व की भावना को प्रकट करते हैं। वेद ने मानवमात्र को 'मनुर्भव' का पाठ पढ़ाया है, जिसका अर्थ है – ''हे मानव ! तुम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनों। तुझमें मानवी मन हो। तुममें समत्व, समानता की भावना हो, न कोई छोटा, न कोई बड़ा हो, सबके दुख-दर्द में समान संवेदना का भाव अन्तर्निहित हो।'' जीवन में सतत सुखी रहने का यही एक मात्र सिद्धान्त है। यही हमको आपसी प्रेम एवं मानव धर्म की शिक्षा देता है। क्योंकि प्रेम ही हमारी चेतना व आत्मा का गुण है। जीवन में सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है, जब हम विश्वबन्धुत्व के भाव को जीवन में अपनायें तथा समाज में सुख-शान्ति का वातावरण तैयार कर मनुष्यता के विकास के लिये प्रयत्न करें।

वैदिक समाज-व्यवस्था चार वर्णो – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित थी। उसके विभाजन का आधार 'कर्म' था, 'जन्म' नहीं। सभी वर्णों के व्यक्ति समान स्तर पर समझे जाते थे, न कोई छोटा, न बड़ा। शूद्र वर्ण का व्यक्ति भी हेय नहीं था, अपितु तत्कालीन समाज का समान स्तरीय भाग था। जहाँ ब्राह्मण अपने शिक्षा-दान से विभूषित था, वहीं शूद्र अपने श्रम के द्वारा समाज की सेवा करता था। कोई भी वर्ण किसी से कम या अधिक नहीं समझा जाता था। वस्तुत: सबकी समान समृद्धि से ही सम्पूर्ण राष्ट्र तथा मानव मात्र की समृद्धि समझी जाती थी।

वैदिक समाज में नारी को भी उत्कृष्ट स्थान प्राप्त था। वेद की अवधारणा है, '**शुद्धा पूता योषिता यज्ञिया इमा:**' अर्थात् स्त्रियाँ शुद्ध, पवित्र हैं और यज्ञ के समान आदरणीय हैं ।'' वैदिक काल में नारियों का स्थान पुरुषों के तुल्य था। यही नहीं उनको आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी उच्च स्थान प्राप्त था। वे युद्धों में भी पुरुषों के समान भाग लेती थीं। महाराजा दशरथ की भार्या महारानी कैकेयी इस तथ्य का ऐतिहासिक प्रमाण हैं। परिवार में वैदिककालीन नारी साम्राज्ञी के पद से विभूषित थी, अथर्ववेद के मंत्र '**सम्राज्ञी श्वसरे भव**' (१४-१-२२) से यह विदित होता है। मूल रूप में वह परिवार की धुरी थी। जिसके अनुशीलन से पूरा परिवार बन्धुत्व की भावना से एक डोर में बँधा हुआ था। यह भावना महाविनाशकारी महाभारत युद्ध के काफी पूर्व से ही क्षीण होनी शुरू हो गई थी और उसके पश्चात् लगभग समाप्त हो गई।

अथर्ववेद में गृहस्थ धर्म के पालन में विश्वबन्धुत्व -

अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवति संमना।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचंवदतु शान्तिवान्।।

अर्थात् पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता का सम्मान करनेवाला हो, पत्नी मधुरभाषिणी हो, पति शान्त और मधुर व्यक्तित्व वाला। (३/३०/२)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यण्चः सव्रताः भूत्वा वाचम् वदत भद्रया।।

अर्थात् भाई-भाई तथा बहन-बहन परस्पर द्वेष न करें। आपस में सदा सुखदायक कल्याणकारी वाणी बोलें। (३/३०/३)

वेदों के कुछ महत्वपूर्ण मंत्र निम्नलिखित हैं –

१. **मिथो विघ्नानां उपयन्तु मृत्युम्।** (अथर्व. ६/३२/३) आपस में लड़ने वाले राष्ट्र और परिवार मृत्यु को प्राप्त होते हैं। २. **अशितावत्यतिथावश्नीयात**।(अथर्व. ९/६/८) – अतिथि को भोजन कराने के उपरान्त ही भोजन करें। ३. **अनागोहत्या वैभीमा** (अथर्व. १०/१/२९) – निरपराध की हत्या बड़ी भयंकर है। ४. **तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।** (यजु.४०/१) – आपके पास जो कुछ भी है, उसका त्याग की भावना से उपयोग करो अर्थात् दूसरों की भी सहायता करते रहो। दूसरे के धन की ओर लोभ की दृष्टि मत डालो। यह धन तुम्हारा नहीं है। ५. **मा मित्रस्य चक्षु समीक्षामहे** (यजु.३६/१८) – हम सब एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। ६. **केवलाघो भवति केवलादी** (ऋ. १०/११७/६) – अकेला खाने वाला व्यक्ति पापी होता है। वेद शिक्षा देता है कि आपके साथ या चारों ओर अनेकों पशु-पक्षी, कीट-पतंग, गरीब परिवार भी रहते हैं, उनका भी भाग आप के भोज्य पदार्थों में है। अत: मिल-बाँट कर खाओ। ७. **स्वस्ति पंथाम् अनुचरेम सूर्या:चन्द्रमसामिव** (ऋ. ५/५१/१५) हे मानव ! तुम उस कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करो, जिस पर सूर्य, चन्द्र चलते हैं, अर्थात् जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र मानव जीवन के कल्याण के प्रतीक हैं, उसी प्रकार तुम भी दूसरों के लिये हितकारी बनो। ८.

प्रपतेत पापी लक्ष्मी (अथर्व. ७/१२०/३) – अधर्म या अनैतिक आचरणों से प्राप्त होने वाली लक्ष्मी रूपी धन मुझसे दूर रहे। ९. **पक्तारं पक्वः पुनुरा विशाति** (अथर्व. १३/३/३८) जैसा पकाया है, वैसा ही सामने आयेगा। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, किन्तु फल पाने में ईश्वराधीन है। अत: कर्म करने के पूर्व फल पर विचार करो कि कर्म का फल क्या होगा। 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे।' 'बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ ते आय', यह अटल सिद्धान्त है और सृष्टि के सभी मानवों पर लागू है।

वेदों में विश्वबन्धुत्व के अनगिनत मन्त्र हैं, यहाँ कुछ मन्त्र दृष्टान्त के रूप में दिये गये हैं, जो **वसुधैवकुटुम्बकम्, सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय** का पवित्र सन्देश देते हैं।

विश्वबन्धुत्व की भावना मानव को संगठन की शिक्षा देती है, जिससे समाज में सुख-शान्ति का वातारण उत्पन्न हो और समाज विकास की ओर अग्रसर हो। वेद का उपदेश है – 'संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्। (ऋ.१०/१९१/२) – हम सब साथ-साथ चलें, प्रेम पूर्वकवार्तालाप करें तथा हमारे मन एक दूसरे से मिले हुए हों।'' वैदिक दर्शन मानवमात्र में संगठन का भाव पैदा करता है, विद्वेष या विच्छेद का नहीं। वेद मन्त्रों में सद्‌गुणों एवं सकारात्मक विचारों का भण्डार है, जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति, दर्शन एवं पारिवारिक मर्यादाओं का आधार प्रस्तुत करता है। इन्हीं गुणों के कारण प्राचीन काल में भारत विश्व में धर्मगुरु के रूप में जाना जाता था। परन्तु आज जातिवाद, छुआछूत परस्पर की घृणा, अशान्ति आदि कुभावनाओं के पनपने से देश की गरिमा को जो ठेस लगी है, उसको पुन: प्राप्त करने के लिये हमको इन सभी कुरीतियों को त्याग कर शोषित वर्ग के साथ समानता का व्यवहार करके विश्वबन्धुत्व का परिचय देना पड़ेगा। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत।** इस मन्त्र में जो भावना व्यक्त की गई है, वह 'विश्वबन्धुत्व' की भावना का सार है। सब सुखी और निरोग हों, सभी अच्छी भावना से देखें, किसी को किसी भी प्रकार का कोई दुख न हो। ❍

भारतीय जीवन-दृष्टि और पुरुषार्थ-चतुष्टय (७)

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा
(प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

अब प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी आदर्श स्थिति प्राप्त की जा सकती है? समस्त भारतीय दर्शन एक स्वर से यह स्वीकार करता है कि यह स्थिति प्राप्त की जा सकती है। शास्त्र और मुक्त महापुरुषों के प्रामाण्य के आधार पर यह असन्दिग्ध रूप से सिद्ध है। इस प्रकार इस विषय में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है, किन्तु इस विषय में अवश्य विद्वानों में मतभेद है कि मोक्ष-प्राप्ति इसी जीवन में प्राप्त होती है या मृत्यु के अनन्तर ही उसकी उपलब्धि सम्भव है। अनेक आचार्य आत्मसाक्षात्कार रूप मोक्ष की प्राप्ति इस जीवन में ही सम्भव मानते हैं। आत्मसाक्षात्कार होते ही व्यक्ति शरीर में रहते हुये भी शरीरादि से अपनी पृथकता का अनुभव कर लेता है। शरीर, इन्द्रिय और बुद्धि से व्यवहार करते हुये भी वह उनसे असम्पृक्त रहता है। प्रारब्ध के द्वारा मिलने वाले भोगों को अनासक्त भाव से भोग कर मृत्यु होने पर वह आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है और कोई कर्म संस्कार अवशिष्ट न होने के कारण उसका फिर जन्म नहीं होता। मोक्ष लाभ कर लेने के कारण जीवितावस्था में वह 'जीवन्मुक्त' और देहपात के अनन्तर 'विदेहमुक्त' कहलाता है।

रामानुजाचार्य जीवन्मुक्ति स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार शरीर, इन्द्रिय आदि अविद्याकार्य हैं, इनसे जीव का सम्पर्क बने रहने तक मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है; अत: रामानुज जीवन्मुक्ति स्वीकार नहीं करते। इन दोनों ही मतों की उपस्थिति उपनिषदों में भी प्राप्त होती है। यद्यपि उपनिषदों में भी मृत्यु के अनन्तर मोक्ष-प्राप्ति की बात कही गई है, तथापि ऐसे कई कथन भी प्राप्त होते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि मोक्ष की प्राप्ति इसी जीवन में सम्भव है।

मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है, यह बात मानव जीवन को न केवल गरिमा प्रदान करती है, अपितु भारतीय चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव को भी सूचित करती है।

मोक्ष आत्मा की मौलिक और परिशुद्ध स्थिति है। अत: जिस मत में आत्मा का जो स्वरूप स्वीकार किया गया है, उसमें मोक्ष का स्वरूप भी उसी प्रकार का है। उदाहरणार्थ न्याय-वैशेषिक आत्मा को सत्ता मात्र स्वीकार करता है, अत: उनका मोक्ष भी शुद्ध सत्ता मात्र है। सांख्ययोग आत्मतत्त्व को ज्ञानरूप स्वीकार करता है; अद्वैत दर्शन सत्, चित् और आनन्द रूप स्वीकार करता है, फलत: इन दर्शनों के अनुसार मुक्तावस्था में आत्मा अपनी इस मौलिक अवस्था में ही स्थित

होती है। वेदान्त दर्शन के वैष्णव संस्करणों में जीव के शुद्धसत्त्वनिर्मित देह धारण कर भगवान की सेवा में रहने से लेकर नित्य लीलाप्रवेश तक मोक्ष के अनेकरूप हैं। मोक्ष की अवधारणा विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों में आत्मा के स्वरूप और परमसत्ता से उसके सम्बन्ध पर आधारित है। यह सम्बन्ध अभेद, भेद और भेदाभेद रूप हो सकता है।

इन भिन्नताओं के होने पर भी कुछ समान विशेषताएँ हैं, जो मोक्ष की स्थिति को परिभाषित करती हैं। मोक्ष में दु:ख की सत्ता नहीं है। न्याय दर्शन में 'दु:खात्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग:' कहकर ही मोक्ष या अपवर्ग को परिभाषित किया गया है। सांख्यकारिकाओं में भी दु:खप्रहाण के लिये ही शास्त्रज्ञान की उपादेयता स्वीकार की गई है, क्योंकि लौकिक और वैदिक उपायों से दु:ख की आत्यन्तिक और एकान्तिक निवृत्ति सम्भव नहीं है। यह अवश्य चिन्तनीय है कि दु:ख के साथ सुख की भी अनुपस्थिति है, क्योंकि सुख-दु:ख परस्पर सापेक्ष धारणाएँ हैं। वाचस्पति मिश्र ने इसे 'विषमधुनीव संपृक्तम्' कहा है। ये मधु और विष की भाँति परस्पर मिश्रित हैं। मधु खाना है, तो उसमें मिले विष को भी खाना होगा और विष नहीं खाना तो मधु भी छोड़ना होगा। जो दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष में सुख की स्थिति मानते हैं, वे आत्मानन्द की स्थिति मानते हैं, विषयानन्द की नहीं। वह सुख विषय-सुख नहीं है, वह आत्मा का अपना स्वभाव है, जो नित्य और स्थायी है।

दूसरी समानता यह है कि सभी मतों में मोक्ष की स्थिति भौतिक शरीर, इन्द्रियों, मन-बुद्धि से आत्मा की पृथकता की स्थिति है। व्यक्ति यह जान लेता है कि प्रकृतिजन्य देहेन्द्रियादि उसका स्वरूप नहीं हैं; वे अनित्य और परिवर्तनशील हैं तथा वह स्वयं नित्य और अविकारी है। इस अलगाव की अनुभूति होने पर उसका बुद्धि, इन्द्रियों और शरीर में जो स्वरूपाध्यास और धर्माध्यास है, वह समाप्त हो जाता है।

तीसरी समानता यह है कि अन्त:करण से अपनी भिन्नता समझ लेने के कारण वह कर्तृत्व और भोक्तृत्व की भावनाओं से मुक्त हो जाता है, फलत: उसके कर्मबन्धन समाप्त हो जाते हैं। आत्मज्ञान के पश्चात् निष्काम भाव से आसक्तिरहित होकर कर्म करने के कारण उसके क्रियमाण कर्मों के संस्कार नहीं बनते, संचित कर्म 'दग्धबीज' होकर परिणाम उत्पन्न नहीं करते, और प्रारब्ध कर्म सुख-दु:खरूप भोग प्रदान कर निश्शेष हो जाते हैं। जीवन्मुक्त पुरुष तटस्थ भाव से प्रारब्ध को स्वीकार करते हैं और शरीर की आयु समाप्त होने पर विदेहमुक्ति को प्राप्त करते हैं।

चौथी महत्त्वपूर्ण समानता यह है कि कर्मबन्धन के नष्ट हो जाने पर जन्म-मरण रूप संसार नष्ट हो जाता है। व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता; वह अपनी निष्कलुष शुद्धता और स्वभावसिद्ध पूर्णता में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस पूर्णता की अभिव्यक्ति के पश्चात् कुछ पाना शेष नहीं रहता। यही मनुष्य का सर्वोच्च प्राप्य है। यह कभी समाप्त न होने वाली परम शान्ति है जिससे मुक्त पुरुष कभी च्युत नहीं होता। इसे ही श्रीकृष्ण 'ब्राह्मीस्थिति' कहते हैं – ''सैषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति''।

इस परमपुरुषार्थरूप मोक्ष की 'पुरुषार्थरूपता' किस प्रकार की है, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अभी तक यही कहा गया है कि पुरुषार्थ का स्वरूप है अभीष्ट की प्राप्ति। पुरुषार्थ 'साध्य' होता है और फलप्राप्ति या इच्छापूर्ति ही उसका स्वरूप है; किन्तु मोक्ष तो आत्मा का स्वरूप है और आत्मा का स्वरूप होने से वह पूर्वसिद्ध है, इस प्रकार वह नित्यप्राप्त हुआ, फिर उसकी पुरुषार्थरूपता कैसे होगी? इसका समाधान यह है कि व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं होता, वह अपने को बुद्धिवृत्तियों से अभिन्न ही समझता है, बुद्धिवृत्तियों के रूप में ही उसे अपना अनुभव होता है। जब उसे अपने वास्तविक रूप का बोध होता है, तो वह एक प्रकार का 'अनावरण' है। अज्ञात होने के कारण वह 'इष्ट' के रूप में भासित होता है और व्यक्ति उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होता है। इस प्रकार मोक्ष इस अर्थ में पुरुषार्थ नहीं है जिस अर्थ में धर्म, अर्थ या काम है। वह अप्राप्त की प्राप्ति नहीं है, वह प्राप्त का बोध है। शांकर मत में इसे बड़ी अच्छी तरह प्रस्तुत किया गया है – ''अज्ञातं ब्रह्म विषय: ज्ञातं ब्रह्म प्रयोजनम्'' – अज्ञात ब्रह्म वेदान्त के व्याख्यान का विषय और ज्ञात ब्रह्म उसका फल है। इस आत्मतत्त्व की संवेदना या स्वसंवेदन के बिना किसी पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं होती। ये तीन पुरुषार्थ इस आत्मा को केन्द्र में रखकर ही चरितार्थ होते हैं, किन्तु अपने उस आत्मस्वरूप का ही सही-सही ज्ञान हमें नहीं होता, हालांकि उसका अनुभव होता है। शास्त्रज्ञान और धर्माचरण के द्वारा हम संकल्पपूर्वक बोधपूर्वक, चरमलक्ष्य के रूप में जब आत्मस्वरूप का अनुसन्धान करने में प्रवृत्त होते हैं, जन्म-मरणरूप संसार का अतिक्रमण कर मुक्त होने का यत्न करते हैं, तब आत्मा की स्थिति विशेषरूप या स्वयं आत्मरूप यह मोक्ष पुरुषार्थ बनता है। सर्वनिरपेक्ष होने के कारण यह परम पुरुषार्थ है तथा अन्य सभी पुरुषार्थ इसमें ही पर्यवसित होते हैं।

चार पुरुषार्थों की यह अवधारणा मनुष्य की सर्वोच्च सम्भावनाओं का विज्ञान है। मनुष्य की चेतना के विभिन्न स्तरों को एकसूत्र में पिरोती यह अवधारणा जीवन की उच्चावच गतियों को मानव की सर्वाधिक समुज्जवल नियति की ओर प्रेरित करती है। ○○○

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में ११ सितम्बर, २०१४ को विश्वभ्रातृत्व दिवस मनाया गया। अतिथियों के दीप-प्रज्ज्वलन और स्वामी विवेकानन्द जी के चित्र पर पुष्पार्पण के बाद विद्यापीठ के बच्चों ने विवेकानन्द-स्तुति का गायन किया। अतिथियों का परिचय और स्वागत विवेकानन्द विद्यापीठ के प्राचार्य श्री एच. डी. प्रसाद जी ने किया। सभा की अध्यक्षता कुशाभाउ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सच्चिदानन्द जोशी जी ने की। श्री जोशीजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मानवता का दृश्य हमें जम्मू-कश्मीर में देखने को मिल रहा है, जहाँ हमारी सेनाएं अपने शरीर पर ही रास्ता बनाकर लोगों को आने-जाने दे रही है। भारत में मानवता आज भी गौरव और गरिमा से जीवित है। स्वामीजी के सन्देश ही हमारे पथप्रदर्शक हैं।

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने 'शिकागो धर्म महासभा का ऐतिहासिक महत्व' पर बोलते हुये कहा कि स्वामी विवेकानन्द मनुष्य की दिव्यता को प्रकाशित करने के लिये आये थे। वे भारत के राष्ट्रदेवता और राष्ट्रधर्म की प्रतिष्ठा करने आये थे। मुख्य वक्ता स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने वर्तमान परिवेश में विश्वबन्धुत्व की विशेष प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। विवेकानन्द शिक्षण संस्थान की प्राचार्या श्रीमती रश्मि पटेल जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

विवेकानन्द प्रेरणा-शिविर

इन्दिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर में १५.०९.२०१४ को विवेकानन्द प्रेरणा शिविर का आयोजन विश्वविद्यालय के विवेकानन्द प्रेक्षागृह में हुआ, जिसमें राज्य के १५०० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। शिविर निर्देशक स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने युवकों को स्वामी विवेकानन्द के विचारों से अवगत कराया। कार्यक्रम में कृषि मन्त्री श्री बृजमोहन अग्रवाल मुख्य अतिथि थे एवं विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एस. के. पाटिल ने अध्यक्षता की। शिविर का आयोजन श्री संजय जोशी जी ने किया।

विवेकानन्द विद्या निकेतन, अम्बिकापुर में विद्यार्थी जागृति शिविर का आयोजन

२४ सितम्बर, २०१४ को विवेकानन्द विद्या निकेतन, अम्बिकापुर में 'विद्यार्थी जागृति शिविर' आयोजित था। इस शिविर का आयोजन बाल वर्ग ४थी और ५वीं कक्षा के छात्रों के लिये किया गया था। विद्यालय के प्राचार्य श्री आर.पी. गुप्ता जी ने छात्रों को स्वामी विवेकानन्द जी के बचपन की प्रेरक घटनाओं को बताया तथा गुरुओं की आज्ञा का पालन करना, उन्हें श्रद्धा करने से सम्बन्धित लव-कुश, ध्रुव-प्रह्लाद की घटनाओं का उल्लेख किया। ब्रजेश दूबे और स्वामी तन्मयानन्द जी ने भी छात्रों को चरित्र-निर्माण के व्यावहारिक सुझाव दिये।

स्वामी आत्मानन्द व्यख्यानमाला का आयोजन

स्वामी विवेकानन्द ग्रामीण विकास समिति, बरबंदा में ७ अक्टूबर, २०१४ को 'स्वामी आत्मानन्द जी का जीवन और सन्देश' पर व्याख्यान आयोजित हुआ, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी निखिलात्मानन्द और डॉ. ओम प्रकाश वर्मा जी ने व्याख्यान दिये।

विश्वबन्धुत्व दिवस मनाया गया

११ सितम्बर, २०१४ को विवेकानन्द सेवाश्रम, अम्बिकापुर में विश्वबन्धुत्व दिवस मनाया गया, जिसमें कई धर्मों के अनुयाइयों ने भाग लेकर मानवीय एकता और शान्ति का सन्देश दिया। डॉ. अभिजीत जैन ने जैन धर्म, हाजी अब्दुल रशीद सिद्दिकी साहब ने इस्लाम धर्म, सरदार रघुबीर सिंह छाबड़ा ने सिक्ख धर्म और फादर जेरोम मिंज ने ईसाई धर्म और स्वामी तन्मयानन्द जी ने हिन्दू धर्म पर व्याख्यान दिये।

उपहार में गीता और विवेकानन्द की पुस्तक

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी ने जापान के प्रधानमन्त्री को स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक और गीता उपहार में दी।

जम्मू-कश्मीर में बाढ़-राहत-कार्य

जम्मू-कश्मीर में विगत सितम्बर महीने में आई बाढ़ के चपेट में बहुत से लोगों के प्राण चले गये और अनेकों लोग बेघर हो गये। रामकृष्ण मिशन, जम्मू-कश्मीर ने बाढ़ से प्रभावित लोगों को राहत-सामग्री वितरित कर विभिन्न प्रकार से सहायता की। जम्मू जिले के – रायपुर जागीर, सेंधवा, सजवाल, सुदान दब्ब्या, हमीरपुर कोहना, कालका नगर, नयी बस्ती, लोवर मुठी, उधोवाला, जसवन – कुल ११ गाँवों के, ६९४ परिवारों में ३५७८ लोगों को निम्नलिखित सामग्रियों का वितरण किया गया – १,७०० किलो आटा, १,४४५ किलो दाल, ९० पैकेट ब्रेड, ६० बोतल आचार, ११८० पैकेट बिस्कुट, २८९ किलो तेल, ६०९ किलो चीनी, और १००० साबुन। साथ ही 'अपना घर बनायें' नामक योजना के अन्तर्गत ७४ गाँवों के १५० परिवारों को ३००० टीन, ८५० बैग सीमेन्ट, २० फीट लम्बे २६० लोहे के पाइप प्रदान किये गये। ○○○

'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०१४ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अन्य संकलन

श्रीरामकृष्ण शरणम्

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर - ४९२ ००१ (छत्तीसगढ़)

सादर सनम्र निवेदन

आत्मीय बन्धु/भगिनी,

स्वामी विवेकानन्द, अपनी जन्मभूमि कलकत्ता के अतिरिक्त सम्पूर्ण पृथिवी में सबसे अधिक समय तक लगातार रहे हों, यदि ऐसा कोई स्थान है, तो वह है 'रायपुर नगर'। रायपुर में सन् १८७७ से १८७९ तक अपनी किशोर अवस्था में स्वामीजी दो वर्ष रहे थे। उन्हीं की पुण्य-स्मृति में रायपुर आश्रम का नामकरण रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम किया गया है।

यह आश्रम गत लगभग ४५ वर्षों से नर-नारायण की सेवा में समर्पित है। आश्रम में निम्नलिखित सेवा विभाग हैं –

(१) धर्मार्थ औषधालय – नेत्ररोग विभाग, स्त्रीरोग विभाग, दन्तरोग विभाग, शिशुरोग विभाग, एक्स-रे विभाग, मनोरोग विभाग, पैथोलॉजी विभाग, नाक-कान-गला विभाग, अस्थिरोग विभाग, इलेक्टो-कार्डियोग्रैफी विभाग, चर्म तथा गुप्तरोग विभाग, फीजियो-इलेक्ट्रो-थेरेपी विभाग, औषधि-वितरण विभाग, न्यूरोलॉजी विभाग, एक्यूप्रेशर विभाग, आहार विशेषज्ञ। (२) फिजियोथेरेपी (३) होमियोपैथी (४) ग्रन्थालय – (अ) विद्यार्थियों के लिये पाठ्य-पुस्तक विभाग (ब) सामान्य ग्रन्थ विभाग (स) पत्र-पत्रिकाओं सहित निःशुल्क वाचनालय (५) विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क छात्रावास (६) श्रीरामकृष्ण मन्दिर (७) साधु-सेवा (८) गोशाला (९) स्कूल के गरीब छात्रों हेतु निःशुल्क कोचिंग क्लास।

गत कुछ वर्षों में आश्रम की सेवा गतिविधियों में पर्याप्त वृद्धि हो गई, परन्तु उसकी तुलना में आर्थिक अभाव के कारण आश्रम के भवनों आदि का विस्तार नहीं किया जा सका है। इसलिये अब आश्रम के कुछ विभागों में सुधार करने की आवश्यकता है। उसी प्रकार आश्रम के पुराने भवनों की मरम्मत, रंग-रोगन आदि भी कराने की अत्यन्त आवश्यकता है।

आश्रम में दो प्रकार के सेवक हैं – (१) साधु-ब्रह्मचारी (२) वेतन-भोगी

साधु-ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण तथा वेतनभोगी सेवकों के वेतनादि के लिये भी आश्रम को स्थायी कोष की आवश्यकता है। आश्रम के सेवा-कार्यों तथा सेवकों, साधु-ब्रह्मचारियों आदि का भरण-पोषण आप जैसे उदार बन्धु-भगिनियों के दान से ही चलता है।

बूँद बूँद से ही घड़ा भरता है। आपके द्वारा दिया गया सभी दान हमारे लिये महान है तथा हमारी योजनाओं में परम सहायक होगा। अतः आपसे सादर अनुरोध है कि निम्नलिखित मदों में उदारतापूर्वक दान देकर अनुगृहीत करें।

(१) निःशुल्क छात्रावास हेतु (तीस लाख) ३०,००,०००/- रु.

(२) सेवक-निवास भवन तथा उपकरण (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(३) बालक संघ तथा निःशुल्क कोचिंग कक्षा हेतु (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(४) मन्दिर के सामने मुख्य द्वार का निर्माण तथा द्वार से मन्दिर तक पथ-निर्माण (पाँच लाख) ५,००,०००/- रु.

(५) पुराने भवनों की मरम्मत तथा रंग-रोगन आदि (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(६) मन्दिर का फूल-उद्यान, जल संसाधन व्यवस्था तथा इनका रख-रखाव एवं विद्युत खर्च (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(७) औषधालय में औषधि आदि का व्यय तथा फिजियोथेरेपि यंत्रों का रख-रखाव, विद्युत व्यय, कर्मचारियों का मानदेय आदि के लिये स्थायी कोष (एक करोड़ पच्चीस लाख) १,२५,००,०००/- रु.

स्थायी कोष के लिये अपेक्षित कुल राशि (रू. दो करोड़ मात्र) २,००,००,०००/- रु.

नर-नारायण की सेवा में आपका सहयोगी,
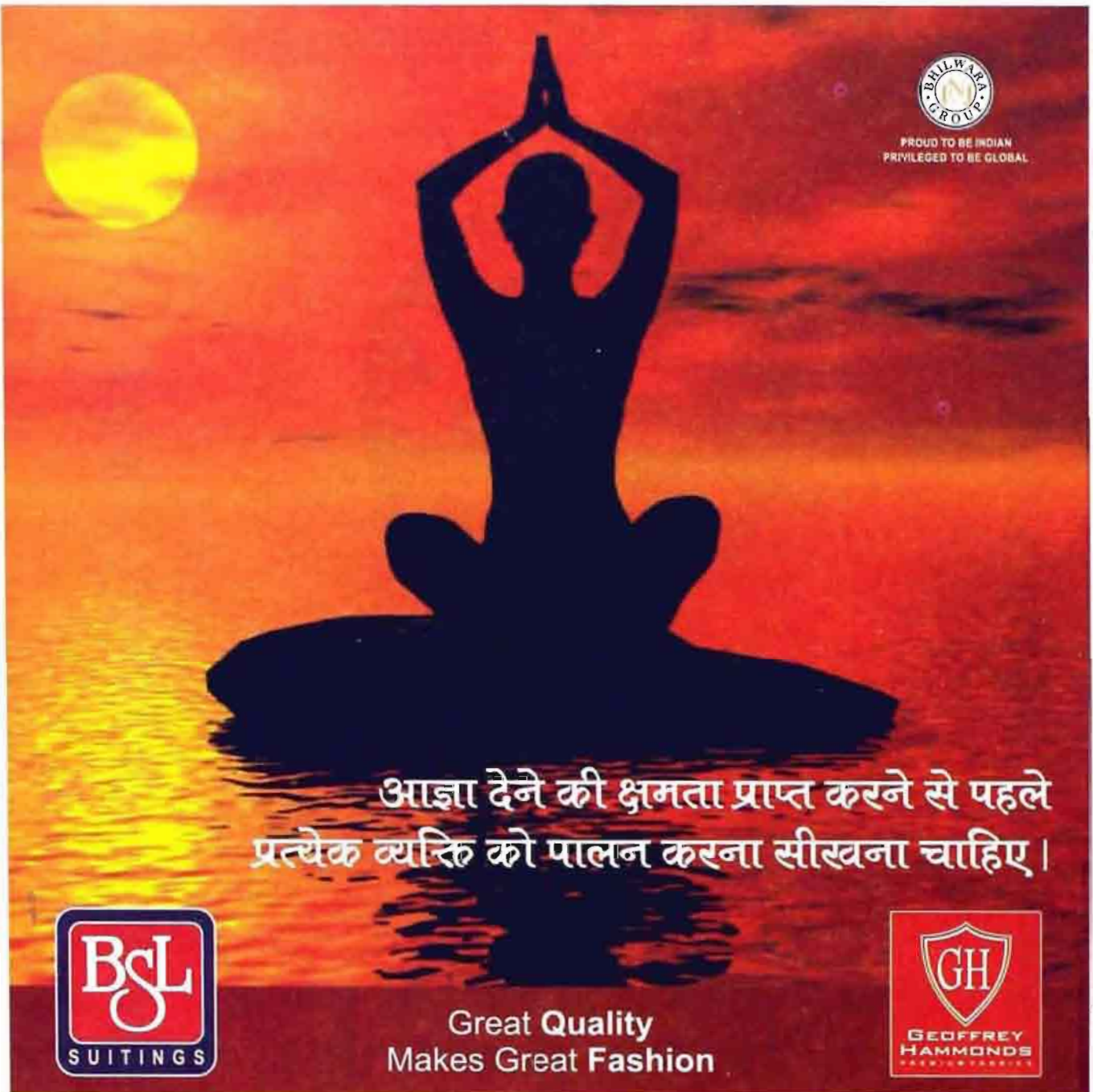
(स्वामी सत्यरूपानन्द)
सचिव

चेक/ड्राफ्ट कृपया रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के नाम पर लिखें।

रामकृष्ण मिशन को दिये गये दान में ८०जी आयकर अधिनियम के अन्तर्गत छूट मिलती है।